ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान
प्रयोजन और प्रयास

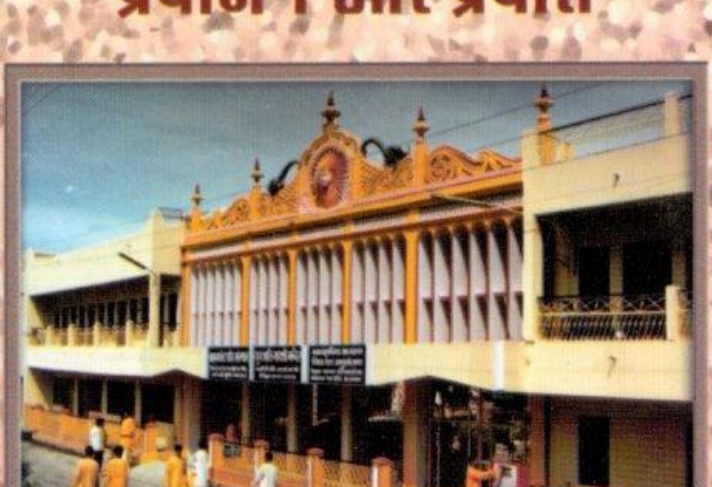

शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान
प्रयोजन और प्रयास

लेखक
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

२०१०

मूल्य : १२.०० रुपये

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

लेखक
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

मुद्रक :
युग निर्माण योजना प्रेस
गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उ. प्र.)

विषय - सूची

१-	अध्यात्म और विज्ञान की सहकारिता	१
२-	महाप्रज्ञा की चौबीस शक्तियों का संक्षिप्त परिचय	९
३-	प्रयोगशाला एवं संदर्भ ग्रन्थालय	१५
४-	वनौषधि उपचार एक-संजीवनी विद्या	२१
५-	वनौषधियों का वाष्पीकृत स्थिति में प्रयोग	३३
६-	शब्दयोग एवं संगीत की प्रभावोत्पादक सामर्थ्य	४८

प्रत्यक्षवाद की कसौटी पर सही न उतरने के कारण विज्ञान ने आत्मा की-परमात्मा की, कर्मफल की सत्ता को नकारा है। यदि उसकी यह बात मान ली जाय तो आदर्शवादिता, नैतिकता, सामाजिकता का कोई ठोस आधार शेष नहीं रह जाता, स्वार्थ सिद्धि ही सर्वोपरि बुद्धिमत्ता ठहरती है। ऐसी स्थिति में सर्वत्र अराजकता एवं उद्धत अनाचार का ही बोलबाला रहेगा। अध्यात्म को नकारने की प्रतिक्रिया मनुष्य समाज को प्रेत-पिशाचों का जमघट बनाकर ही छोड़ेगी।

इस विषम परिस्थिति में अध्यात्म की पुनर्स्थापना केवल श्रद्धा के बल पर सम्भव नहीं है। उसे विज्ञान और प्रत्यक्षवाद की कसौटी पर भी खरा सिद्ध करना होगा। इसी आधार पर प्रबुद्ध वर्ग को वे सनातन सत्य स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जा सकेगा, जिनकी आवश्यकता मनुष्य के विकास के लिए अनिवार्य रूप है। शांन्तिकुञ्ज के ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान ने यही लक्ष्य हाथ में लिया है कि 'बुद्धिवाद को विज्ञान की कसौटी पर कसकर, अध्यात्मवाद की गरिमा स्वीकार करने के लिए प्रत्यक्षवाद को सहमत किया जाय।'

परम पूज्य गुरुदेव

अध्यात्म और विज्ञान की सहकारिता

कोई समय था जब शास्त्र उल्लेख और आप्त वचनों को प्रामाणिक मान लिया जाता था। श्रद्धालुजन उसमें सन्देह-विवाद की आवश्यकता नहीं समझते थे। कहीं किसी तथ्य को समझने में कठिनाई होती थी, तो जिज्ञासा भाव से उसका समाधान पूछ लिया जाता था- बात समाप्त हो जाती थी।

आज वातावरण बदल गया है। विज्ञान ने प्रत्यक्षवाद को बहुत बढ़ावा दिया है। संकीर्ण अहमन्यता के दौर भी जूड़ी-बुखार की तरह हर किसी पर लदे हैं। पुरातन मूल्यों, प्रतिपादनों और निर्धारणों पर अविश्वास किया और उपहास उड़ाया जाता है। ऐसी दशा में लगता है कि मानव जाति को उत्कृष्टता एवं आदर्शवादिता का पाठ नये सिरे से पढ़ाना पड़ेगा। विकृत बुद्धिवाद ने उन आधारों को भी उलट-पुलट कर रख दिया है, जिन्हें मानवी गरिमा का प्राण एवं मेरुदण्ड कहा जाता रहा है। क्यों, कैसे? की जिज्ञासा को तो इससे मान्यता मिलती है पर उसने सहज विश्वास को भी हिला दिया है।

आस्तिकता,आध्यात्मिकता और धार्मिकता, यह ऐसे सत्य हैं, जो मनुष्य के कारण, सूक्ष्म और स्थूल शरीर को सुसंयत रखने, शान्ति प्रदान करने तथा प्रगति पथ पर अग्रसर करने के लिए नितान्त अनिवार्य हैं; किन्तु कठिनाई यही है कि इन सनातन सत्यों को भी, शंकाओं के घेरे में कैद कर दिया गया है। अनास्था के माहौल में मात्र प्रत्यक्ष ही सब कुछ रह गया है। इन दिनों उभरते आवेशों में प्रत्यक्षवाद और विज्ञान की कसौटी पर ऐसा सब कुछ नकार दिया गया है, जो श्रद्धा पर अवलंबित था और उत्कृष्टता के साथ अविच्छिन्न रूप से

जुड़ा हुआ था। ऐसी विषम स्थिति में ''श्रद्धा युग'' को वापिस लौटाना तो कठिन प्रतीत होता है, सरल और सम्भव यही रह जाता है कि विज्ञान और प्रत्यक्षवाद के आधार को मान्यता दी जाए। उसे अपनाते हुए भी, प्रबुद्ध वर्ग को उन सनातन सत्यों को स्वीकार करने के लिए मजबूर किया जाए। उत्कृष्टता शास्त्र-सम्मत ही नहीं, भौतिक विज्ञान की कसौटी पर कसे जाने के लिए भी पूरी तरह तैयार है। साँच को आँच कहाँ?

शान्तिकुञ्ज के ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान ने एक की लक्ष्य हाथ में लिया है कि बुद्धिवाद की- विज्ञान की कसौटियों पर कसकर, आध्यात्मिक मान्यताओं की गरिमा स्वीकारने के लिए प्रत्यक्षवाद को सहमत किया जाए।

कार्य बहुत बड़ा और कठिन है। इसके लिए ज्ञान-विज्ञान की अनेकानेक दिशाधारा को हाथ में लेना होगा। अध्यात्म का विज्ञान के साथ और विज्ञान का अध्यात्म के साथ इस प्रकार ताल-मेल बिठाने के लिए पथ प्रशस्त किया जाएगा कि दोनों ही अपने को सत्य-शोधक स्वीकार करें। अपनी मान्यताओं को दूसरे पक्ष की कसौटी पर कसकर देखें एवं उन्हें दोनों आधार पर सही सिद्ध करने की चेष्टा करें। यदि पूर्वाग्रह न रहे, अपना कथन सत्य एवं दूसरे का झूठा ठहराने के लिए दुराग्रह न रखें, तो आज के परिवेश में अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय सम्भव है। यदि ऐसा बन पड़े तो मनुष्य के सामने इन दिनों उपस्थित एक बड़ी उलझन का निराकरण होगा। दो विपरीत दिशाओं में खींची जाने वाली बुद्धि, असमंजस की अनावश्यक खींचतान से बचकर एक सीधी, सुनिश्चित और सर्वमान्य दिशाधारा पर चल सकने में समर्थ होगी।

विज्ञान ने आत्मा की-परमात्मा की, कर्मफल की सत्ता को नकारा है। यदि उसकी यह बात मान ली जाए, तो नैतिकता-सामाजिकता का कोई आधार शेष नहीं रह जाता। स्वार्थ सिद्धि ही सर्वोपरि बुद्धिमत्ता और सफलता ठहरती है। ऐसी दशा में दूसरों की सुविधा या कठिनाई पर विचार करने की भी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। यदि यही प्रचलन चल पड़े, तो मनुष्य अधिक बुद्धिमान साधन-सम्पन्न होने के साथ, अनाचार की चरम सीमा तक पहुँच सकता है। ऐसी स्थिति में इस दुनिया में सर्वत्र अराजकता एवं उद्धत अनाचार का ही बोल-बाला होकर रहेगा।

प्रस्तुत सम्भावना पर विचार करते हुए युग-मनीषियों ने यह प्रयत्न किया है कि अध्यात्मवादी उत्कृष्टता को विज्ञान की कसौटियों पर कसने और उन्हें खरा सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाए। तथ्यों को देखते हुए यह उद्देश्य पूरा हो सकना सम्भव भी दिखाई पड़ता है। इसके लिए अध्यात्म तत्त्वज्ञान को, विज्ञान की प्रयोगशाला में कसना आरम्भ कर दिया गया है। परिणाम अच्छे ही निकल रहे हैं। तर्क, तथ्य और प्रमाणों का समुच्चय भी प्रत्यक्षवाद का अंग होने के कारण, वैज्ञानिक प्रयोगों में भी सम्मिलित किया जाता है।

पिछले दिनों परामनोविज्ञान क्षेत्र में कई प्रयोग-परीक्षण हुए हैं। उस आधार पर अतीन्द्रिय क्षमताओं के 'बीज' मानवीय चेतना में विद्यमान पाये गए हैं। दूरदर्शन, दूरश्रवण, विचार-संचालन, भविष्य-कथन, स्वप्नाभास, मरणोत्तर-जीवन, पुनर्जन्म आदि विषयों पर सफल प्रयोग हुए हैं। मानवीय विद्युत का हस्तान्तरण, मैस्मरिज्म, हिप्नोटिज्म, साइकिक हीलिंग जैसी विज्ञान की धाराएँ परिपूर्ण प्रामाणिकता के साथ उभर कर आयी हैं।

इन उपलब्धियों के आधार पर यह सोचना ही पड़ता है कि चेतना मात्र शरीर का ही एक उफान-उत्पादन नहीं है, वरन् उसकी स्वतंत्र और व्यापक सत्ता का भी अस्तित्व है। मनः शास्त्र की रहस्यमय परतें दिन-दिन अधिक प्रामाणिकता के साथ उभर रही हैं। विचार-शक्ति का, शरीर-सत्ता पर कितना अधिक प्रभाव है, इसके प्रमाण पुरातन खोजों और नवीनतम शोधों के आधार पर अधिकाधिक प्रकट-प्रत्यक्ष होते जा रहे हैं। ब्रह्माण्ड की शक्तियाँ पिण्ड में सन्निहित पायी गयी हैं। सौरमण्डल का गतिचक्र पूरी तरह मानवी काया में विद्यमान जीवकोषों एवं प्रकृति के लघुतम घटक 'परमाणु' में यथावत् काम करते देखा गया है। मानव-मस्तिष्क की सम्भावनाओं का आँकलन करने वालों का कथन है कि इस क्षेत्र की मात्र सात प्रतिशत गतिविधियाँ ही प्रकाश में आती हैं। यदि ९३ प्रतिशत भी जानी और प्रयोग में लायी जा सकें, तो मानवीय क्षमता की असीम सम्भावनाओं का भाण्डागार हाथ लग सकता है।

जिस प्रकार प्रकृति के रहस्यों को खोजते-खोजते मनुष्य लेसर किरणों और अन्तरिक्ष के आधिपत्य की स्थिति तक जा पहुँचा है, उसी प्रकार यह विश्वास भी सुदृढ़, सुनिश्चित होता जाता है कि चेतना की इस विश्व ब्रह्माण्ड में स्वतंत्र सत्ता है और प्रकृति के हर क्षेत्र पर उसका सशक्त आधिपत्य है। इस प्रतिपादन ने अध्यात्म तत्त्वज्ञान को एक बड़ी सीमा तक मान्यता दी है। वह दिन दूर नहीं, जब आत्मा और परमात्मा को भी प्रकृति के आवरणों में आँख मिचौली करते हुए ढूँढ़ा जा सकेगा।

मनुष्य का निजी व्यक्तित्व, आदर्शवादी सिद्धान्तों को अपनाकर ही देवोपम स्थिति में पहुँचने योग्य विकसित होता है। समाज में न्यायोचित व्यवस्था बन पड़ना भी औचित्य अपनाये जाने पर ही निर्भर है। यह अध्यात्म का प्राण-सार तत्त्व कहा जा सकता है। इसके न रहने पर यहाँ जंगल का कानून चलने लगेगा। बड़ी मछली छोटी को निगलने लगेगी। शोषण, अपहरण एक मान्य नियम बन जायेगा। ऐसी स्थिति में दुनिया, डरते-डराते रहने वाले प्रेत-पिशाचों की श्मशान जैसी ही बनी रह जायगी। वह स्थिति न आने पाए, इसलिए हर समझदार व्यक्ति को मान्यताएँ सुधारने और व्यवहार को न्यायनिष्ठ बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। यह दायित्व तत्त्वदर्शियों और वैज्ञानिकों पर विशेष रूप से आता है।

अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय इसी महान् प्रयोजन की पूर्ति करता है। इस दिशा में विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न स्तरों पर प्रयास आरंभ हुए हैं। उनमें से एक प्रयास शान्तिकुञ्ज के ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान का भी है। पिछले कई वर्षों में उसने एक-एक कदम बढ़ाते हुए उपयुक्त दिशाधारा का निर्धारण किया है एवं आवश्यक उपकरण जुटाये हैं। प्रत्यक्षवाद के बुद्धिवादी पक्ष को अध्यात्म का पक्षधर बनाने के लिए प्रयोगशाला के अतिरिक्त एक विशाल पुस्तकालय की आवश्यकता थी। इस हेतु संसार के कोने-कोने से ऐसा दुर्लभ साहित्य एकत्र किया गया है, जो अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति में सहायक सिद्ध हो सके। ब्रह्मवर्चस में ऐसी साधन सम्पन्न प्रयोगशाला भी खड़ी की गयी है ताकि पदार्थ के स्थूल स्वरूप का ही नहीं, चेतना-क्षेत्र की सूक्ष्म गतिविधियों का भी आँकलन किया जा सके।

प्रथम तल गायत्री शक्तिपीठ- अध्यात्म की फिलॉसफी और साधना विज्ञान का समन्वय द्रष्टा ऋषियों ने महाप्रज्ञा गायत्री के रूप में किया है, वे विवेक की अधिष्ठात्री देवी हैं। अथर्ववेद में तो उन्हें वेदमाता नाम देते हुए पूरी स्तुति गान को प्रस्तुत देखा जा सकता है, जो विचारणा को श्रेष्ठतापरक मोड़ देने के लिए प्रेरित करती हैं। गायत्री मंत्र के चौबीस अक्षरों में से प्रत्येक में जो दक्षिणमार्गी, वाममार्गी शक्तिधाराएँ सन्निहित हैं, उनका कलात्मक चित्रण ऋषियों ने अपनी गहन अनुभूतियों के आधार पर किया है। इन्हीं शक्ति धाराओं को प्रतीक प्रतिमाओं के रूप में यहाँ स्थापित किया गया है। ये सूत्र संकेत हैं, जो बताते हैं कि प्रत्येक में ज्ञान और विज्ञान की, योग और तप की विभिन्न विभूतियों का समावेश है। इन प्रतीकों के माध्यम से अन्तः क्षेत्र की श्रद्धा को दिशा देने में साधक को सुविधा रहती है।

महाप्रज्ञा गायत्री आद्यशक्ति के रूप में दिव्य चेतन शक्तियों का अनादि उद्गम केन्द्र है। वह वेदमाता अर्थात् सद्ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी, देवमाता है अर्थात् सद्भावों की प्रेरणा पुंज, विश्वमाता है अर्थात् 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के दर्शन को हृदयंगम कराने वाली सार्वभौम शक्ति। उसे ब्राह्मी के रूप में सृजनात्मक सत्प्रवृत्तियों के प्रमुख बीजों को उगाने वाली महाशक्ति, वैष्णवी के रूप में सृष्टि की सुव्यवस्था बनाने वाली शक्ति- सामर्थ्य, शांभवी के रूप में सृष्टि संतुलन हेतु अवतरित प्रलयंकर शक्ति के रूप में भी समझा जा सकता है।

सभी शक्ति धाराएँ एक ही अनादि स्रोत की विभिन्न शाखाएँ हैं, जो भिन्न-भिन्न रूपों में व्यक्ति के चिन्तन, चरित्र और व्यवहार के समूचे चेतन परिवार का परिष्कार कर उसका काया-कल्प कर दिखाती हैं। गायत्री सार्वभौम है। वह किसी देश, धर्म जाति या लिंग की बपौती नहीं। वर्षा एवं धरती की तरह उसका उपयोग करने की हर किसी को पूरी छूट है। गायत्री का तत्त्वदर्शन संसार का सबसे छोटा किन्तु सारगर्भित धर्मशास्त्र है। उसके साधना विधान में ऋद्धि-सिद्धियों के भण्डार छिपे पड़े हैं। गायत्री की शब्द-ब्रह्म, नाद-ब्रह्म रूपी साधना के लाभों को अलंकारिक रूप में अमृत, पारस, कल्पवृक्ष, कामधेनु, ब्रह्मास्त्र जैसे विभिन्न रूपों में समझाया गया है। तात्पर्य यही है कि इस महाप्रज्ञा का आश्रय लेने वाला भवबंधनों के त्रास के छूट जाता है एवं दिव्य विभूतियाँ प्राप्त करने योग्य पात्रता अर्जित कर लेता है।

गायत्री का वाहन हंस है अर्थात् विवेक एवं औचित्य का वरण करने वाला। उपकरण है-पुस्तक एवं कमण्डलु। पुस्तक को स्वाध्याय, ज्ञान एवं कमण्डलु को पात्रता धारण करने की क्षमता का प्रतीक माना गया है। नारी शक्ति की वरिष्ठता एवं मानवी गरिमा के प्रति श्रद्धान्वित रहने की दृष्टि से गायत्री को नारी रूप प्रदान किया गया है।

चौबीस शक्तियों के प्रतीक, वाहन एवं आयुधों के अतिरिक्त तंत्र विज्ञान के अनुसार प्रत्येक का एक शक्तियंत्र, साधना में संपुट देने हेतु बीजाक्षर, एक देवता एवं एक ऋषि है। देवी का अर्थ है साधनाशक्ति, देवता का अर्थ है तत्त्वदर्शन एवं ऋषि का अर्थ है साधक का स्तर। ये तीनों मिलकर एक परिपूर्ण अध्यात्म प्रवाह

बनते हैं। यह व्याख्या दक्षिण मार्ग निगम परम्परा के अनुसार है। दूसरा वाममार्गी आगम मार्ग भी है, जिसे शुक्राचार्य प्रतिपादित तंत्र या दैत्य परम्परा कहा जाता है। इसके साथ गायत्री महामंत्र का एक-एक अक्षर, एक-एक बीज, एक-एक मंत्र और ऊर्जा का भँवर केन्द्र **शब्द स्फोट** है। यह साधक के भौतिक कायकलेवर में काम करने वाली ऊर्जा है।

प्रस्तुत शक्तिपीठ में गायत्री के चौबीस अक्षरों के प्रतीक शक्ति धाराओं में से प्रत्येक के दक्षिणमार्गी एवं वाममार्गी, अध्यात्म प्रधान एवं भौतिक प्रधान स्वरूप का चित्रांकन हर मूर्ति के साथ किया गया है। उन्हें देख-समझ कर हर कोई यह जान सकता है कि वाक् ऊर्जा की अपरिमित सम्पदा से भरी पूरी गायत्री महाशक्ति का आश्रय लेकर, इन बीज मंत्रों का सम्पुट लगाकर हर साधक अपने अन्दर प्रसुप्त पड़ी क्षमताओं को जगाकर विभूतिवान् बन सकता है। साथ चलने वाले मार्गदर्शक इस विज्ञान सम्मत गायत्री विद्या के दर्शन को व्यावहारिक रूप में समझाते हैं ताकि यहाँ आने वाला, दर्शन करके जाने वाला मात्र चर्मचक्षु से ही नहीं, अन्तर्चक्षुओं से भी यह बोध कर सके कि विश्व भर के सभी गायत्री शक्तिपीठों के सर्वोच्च केन्द्र ब्रह्मवर्चस में आने पर वह कितना कृतार्थ हो गया। अध्यात्म ज्ञान को बोधगम्य भाषा में समझकर वह न्यूनतम संकल्प गायत्री उपासना को नित्य नैमित्तिक कार्य का अंग बनाने का संकल्प लेकर जाता है। इस संवर्धन में अधिक जानने-समझने के लिए प्रचुर मात्रा में परम पूज्य गुरुदेव द्वारा रचित आर्ष साहित्य उपलब्ध है, जिसमें गायत्री महाविद्या के गूढ़तम सूत्रों को सरल रूप में समझाया गया है।

महाप्रज्ञा की चौबीस शक्तियों का संक्षिप्त परिचय

(१) **आद्यशक्ति**- अर्थात् सृष्टि की मूल चेतना। आदिदेव ॐ कार के रूप में इसे ही प्रथम और सर्वोपरि पूज्य माना गया है। पुरुषवाचक संबोधन में इसे परब्रह्म भी कहते है। यह यहाँ का मुख्य मन्दिर है, जिसे ज्ञानमन्दिर के रूप में विनिर्मित किया गया है। समग्र गायत्री महाविद्या के मर्म को इस एक में भी समझा जा सकता है।

(२) **ब्राह्मी**- अर्थात् महाविद्या, सद्ज्ञान, सद्विचार। सृजनात्मक सत्प्रवृत्तियों के प्रसुप्त बीजों को जगाने-उगाने वाली महाशक्ति।

(३) **वैष्णवी**- व्यवस्था बुद्धि का पर्याय। संसार की सुव्यवस्था करने वाली, परिपोषण करने वाली- विश्वम्भर शक्ति।

(४) **शाम्भवी**- अवांछनीयता का निवारण करने वाली परिवर्तनकारी शक्ति, सृष्टि संतुलन हेतु अनिवार्य प्रलयंकर शक्ति, जो अपने प्रभाव से व्यक्ति के जीवन में गुण, कर्म, स्वभाव का परिष्कार करती है।

(५) **वेदमाता**- ज्ञान-विज्ञान की समस्त ज्ञात-अविज्ञात धाराओं की गंगोत्री, ज्ञान की जननी वेदगर्भा-वेदविद्या की कुञ्जी।

(६) **देवमाता**- देवत्व को जन्म देनेवाली देवोपम स्तर की मनः स्थिति बनाने वाली देवी।

(७) **विश्वमाता**- सार्वभौम संस्कृति के संविधान का निरूपण करने वाली, वसुधैव कुटुम्बकम् के दर्शन को सार्थक करने वाली शक्ति।

(८) **ऋतम्भरा**- सत्य-असत्य, औचित्य-अनौचित्य में ऋत् का वरण करने में साधक को सहायता देने वाली शक्ति।

(९) **मंदाकिनी**- अर्थात् गंगा के समान पवित्र, बाह्याभ्यन्तर को शुद्ध करने वाली देवी।

(१०) **अजपा**- निश्चल स्थिति-अविचल निष्ठा की सिद्धि देने वाली।

(११) **ऋद्धि**- आत्मिक विभूतियों से व्यक्ति को असाधारण बना देने वाली शक्ति।

(१२) **सिद्धि**- वैभव की अधिष्ठात्री, मनुष्य को प्रामाणिक, समृद्ध-सम्पन्न बनाने वाली देवी।

(१३) **सावित्री**- अचेतन की रहस्यमयी परतों का अनावरण करने वाली पंचमुखी सावित्री शक्ति।

(१४) **सरस्वती**- बुद्धि को प्रखर और परिष्कृत करने वाली सद्विचारणा की देवी।

(१५) **लक्ष्मी**- अर्थात् सर्वतोमुखी सम्पन्नताप्रदायक शक्ति जो साधक में "श्री" तत्त्व बढ़ाने वाले गुणों का विकास करती है।

(१६) **महाकाली**- असुरता का संहार करने वाली, मृत्यु की प्रतीक, प्रचण्डता-प्रखरता की पर्याय रौद्र शक्ति।

(१७) **कुण्डलिनी**- जीवन की सामान्य ऊर्जा को असामान्य में परिष्कृत कर चमत्कारी सफलताएँ प्रदान करने वाली, तंत्रविद्या की अधिष्ठात्री देवी।

(१८) **प्राणाग्नि**-साधक को प्राणवान् बनाने वाली, जीवनी-शक्ति बढ़ाकर अंतः सामर्थ्य बढ़ाने वाली शक्ति।

(१९) **भुवनेश्वरी**- नियम-मर्यादाओं के परिपालन की कसौटी पर विश्व-वैभव का अधिष्ठाता बना देने वाली शक्ति।

(२०) **भवानी**- संगठन कौशल का धनी बनाने वाली, व्यक्ति को युग-नेतृत्व सौंपने वाली दैवी विभूति।

(२१) **अन्नपूर्णा**- वह चेतना शक्ति जिसकी कृपा से साधक को अभाव नहीं सताने पाते। अर्थ-सन्तुलन हेतु सद्बुद्धि देने वाली शक्ति।

(२२) **महामाया**- भ्रान्तिओं का निवारण करनेवाली, भव-बंधनों से मुक्ति दिलाने वाली।

(२३) **पयस्विनी**- भूलोक की कामधेनु, जिसकी कृपा से साधक में ब्रह्मतेज बढ़ता है, कोई अभाव नहीं रहता।

(२४) **त्रिपुरा**- ओजस्, तेजस् और वर्चस् बढ़ाने वाली, पापों से उबार कर महान् बनाने वाली सामर्थ्य वाली देवी।

गायत्री महाशक्ति के चौबीस रूपों के अपने वाहन, वस्त्राभूषण, साज-सज्जा और उपकरणों की अपनी-अपनी विशेषता है। इनकी व्याख्या स्वयंसेवी मार्गदर्शक दर्शनार्थियों के समक्ष कर प्रत्येक का शास्त्र-सम्मत एवं विज्ञान-सम्मत माहात्म्य समझाते हैं। प्रत्येक मन्दिर में हर मूर्ति के साथ एक बीज मंत्र, उनका मंत्राक्षर एवं बीजाक्षर तथा उसकी व्यावहारिक विवेचना प्रस्तुत की गई है।

गायत्री मंत्र में चौबीस अक्षर हैं। ''ण्यम्'' पद का ''णियम्'' उच्चारण दो मात्राओं के बराबर णि और यम् के रूप में होता है और चौबीस अक्षरों की गणना पूरी हो जाती है। इस मंत्र का शब्द-गुंफन विशेष प्रकार का है। प्रत्येक अक्षर एक-एक विशिष्ट देवी-शक्तिधारा का, देवता का, ऋषि का, शक्ति बीज का, यंत्र चक्र एवं विभूति का प्रतीक है। इनमें से प्रत्येक के अपने-अपने रहस्य, प्रयोग और प्रतिफल हैं।

ॐकार परब्रह्म है। उसे शब्दब्रह्म-नादब्रह्म के नाम से भी जाना जाता है। ॐकार के तीन अक्षरों से तीन व्याहृतियाँ उत्पन्न हुईं। ''ॐ भूः भुवः स्वः'' यह गायत्री मंत्र का शीर्ष भाग है। पृथक् होते हुए भी इसका मंत्र के आदि में नियोजन होता है।

''तत्'' अक्षर की देवी ''आद्यशक्ति'', देवता 'परब्रह्म', बीज 'ॐ', ऋषि विश्वामित्र, यंत्र 'गायत्री यंत्र', विभूति प्रज्ञा एवं दीक्षा तथा प्रतिफल आप्तकाम एवं सुसंस्कारिता हैं।

''स'' अक्षर की देवी ''ब्राह्मी'', देवता 'ब्रह्मा', बीज 'हीं', ऋषि वशिष्ट, यंत्र 'ब्राह्मी यंत्रम्', विभूति श्रद्धा एवं युक्ता तथा प्रतिफल सृजन शक्ति एवं सुसंतति हैं।

''वि'' अक्षर की देवी ''वैष्णवी'', देवता 'विष्णु', बीज 'णं', ऋषि नारद, यंत्र 'वैष्णवी यंत्रम्', विभूति निष्ठा एवं क्षेमा और प्रतिफल वर्चस् एवं दिव्य वैभव हैं।

''तु:''अक्षर की देवी ''शाम्भवी'', देवता 'शिव', बीज 'शं', ऋषि अत्रि, यंत्र 'शाम्भवी यंत्रम्', विभूति मुक्ता एवं शिवा तथा प्रतिफल हैं मुक्ति प्राप्ति एवं अनिष्ट निवारण।

''व'' अक्षर की देवी ''वेदमाता'', देवता 'आदित्य', बीज 'ओं', ऋषि वेदव्यास, यंत्र 'विद्या यंत्रम्', विभूति स्मृति एवं विद्या और प्रतिफल दिव्य स्फुरणा एवं सद्ज्ञान हैं।

''रे'' अक्षर की देवी ''देवमाता'', देवता 'इन्द्र', बीज 'लृं', ऋषि भृगु, यंत्र 'देवेश यंत्रम्', विभूति दिव्या एवं देवयानी तथा प्रतिफल देवत्व एवं सद्चरित्रता हैं।

''णि'' अक्षर की देवी ''विश्वमाता'' देवता 'विश्वकर्मा', बीज 'स्त्रीं' ऋषि अंगिरा, यंत्र 'मातृ यंत्रम्', विभूति विराटा एवं ध्येया और प्रतिफल विराटानुभूति एवं सहयोग सिद्धि हैं।

''यं'' अक्षर की देवी ''ऋतम्भरा'' देवता 'हिरण्यगर्भ', बीज 'ऋं', ऋषि भारद्वाज, यंत्र 'ऋत यंत्रम्', विभूति सत्या एवं सुमुखी तथा प्रतिफल स्थितप्रज्ञता एवं न्यायप्राप्ति हैं।

''भ'' अक्षर की देवी ''मंदाकिनी'', देवता 'वसु', बीज 'उं' ऋषि गौतम, यंत्र 'निर्मला यंत्रम्', विभूति निर्मला एवं विरजा और प्रतिफल निर्मलता एवं पाप नाश हैं।

''गो'' अक्षर की देवी ''अजपा'', देवता 'मरुत', बीज 'यं', ऋषि पातंजलि, यंत्र 'निरंजना यत्रम्', विभूति निरंजना एवं सहजा, प्रतिफल शान्ति एवं भयनाश हैं।

''दे'' अक्षर की देवी ''ऋद्धि'', देवता 'गणेश', बीज 'गं', ऋषि कणाद, यंत्र 'ऋद्धि यंत्रम्', विभूति तुष्टा एवं भद्रा तथा प्रतिफल तुष्टि एवं गुणवत्ता हैं।

''व'' अक्षर की देवी ''सिद्धि'', देवता 'क्षेत्रपाल', बीज 'क्षं', ऋषि अगस्त्य, यंत्र 'सिद्धि यंत्रम्', विभूति सूक्ष्मा एवं योगिनी तथा प्रतिफल तन्मयता एवं कार्यकुशलता हैं।

''स्य'' अक्षर की देवी ''सावित्री'', देवता 'सविता', बीज 'ज्ञं', ऋषि पुलस्त्य, यंत्र 'सावित्री यंत्रम्', विभूति कल्याणी एवं इष्टा और प्रतिफल ब्रह्मविद्या एवं साफल्य हैं।

''धी'' अक्षर की देवी ''सरस्वती'', देवता 'प्रजापति', बीज 'ऐं', ऋषि कश्यप, यंत्र 'सरस्वती यंत्रम्', विभूति हर्षा एवं प्रभवा तथा प्रतिफल उल्लास एवं कलात्मकता हैं।

''म'' अक्षर की देवी ''महालक्ष्मी'', देवता 'कुबेर', बीज 'श्रीं', ऋषि आश्वलायन, यंत्र 'श्री यंत्रम्', विभूति तारिणी एवं श्रीमुखी और फलश्रुति सदेच्छा एवं सम्पन्नता हैं।

''हि'' अक्षर की देवी ''महाकाली'', देवता 'महाकाल', बीज 'क्लीं' ऋषि दुर्वासा, यंत्र 'कालिका यंत्रम्', विभूति भर्गा एवं वज्रिणी तथा प्रतिफल कल्मशनाश एवं शत्रुनाश हैं।

''धि'' अक्षर की देवी ''कुण्डलिनी'', देवता 'भैरव', बीज 'लं', ऋषि कण्व, यंत्र 'भैरव यंत्रम्', विभूति धृति एवं प्रतिभा तथा प्रतिफल ओजस्विता एवं उन्नति हैं।

''यो'' अक्षर की देवी ''प्राणाग्नि'', देवता 'जातवेद', बीज 'रं', ऋषि याज्ञवल्क्य, यंत्र 'ऊर्जा यंत्रम्', विभूति स्वाहा एवं अजरा तथा प्रतिफल पुष्टि एवं आरोग्य हैं।

''यो'' (यः) अक्षर की देवी ''भुवनेश्वरी'', देवता 'पुरन्दर', बीज 'खं', ऋषि जमदग्नि, यंत्र 'विभु यंत्रम्', विभूति गौरी एवं विश्वोत्तमा और प्रतिफल सुयश एवं ऐश्वर्य हैं।

''नः'' अक्षर की देवी ''भवानी'', देवता 'रुद्र', बीज 'हुं', ऋषि वैशम्पायन, यंत्र 'दुर्गा यंत्रम्', विभूति ध्रुवा एवं अमोघा तथा प्रतिफल संकल्प सिद्धि एवं अजेयता हैं।

''प्र'' अक्षर की देवी ''अन्नपूर्णा'', देवता 'पूसा' बीज 'अं', ऋषि पिप्पलाद, यंत्र 'अन्नपूर्णेश्वरी यंत्रम्', विभूति तृप्तता एवं पूर्णोदरी तथा प्रतिफल तृप्ति एवं अभाव मुक्ति हैं।

''चो'' अक्षर की देवी ''महामाया'', देवता 'महादेव' बीज 'हं', ऋषि कात्यायन, यंत्र 'योगिनी यंत्रम्', विभूति मेधा एवं पाशिनी तथा प्रतिफल तत्त्वदृष्टि एवं भ्रममुक्ति हैं।

''द'' अक्षर की देवी ''पयस्विनी'', देवता 'वरुण', बीज 'वं', ऋषि धौम्य, यंत्र 'वरुण यंत्रम्', विभूति स्वधा एवं आर्द्रा तथा प्रतिफल स्नेह एवं सरसता हैं।

''यात्'' अक्षर की देवी ''त्रिपुरा'', देवता 'त्र्यम्बक', बीज 'त्रीं', ऋषि मार्कण्डेय, यंत्र 'त्रिधा यंत्रम्', विभूति त्रिधा एवं त्रिशूला तथा प्रतिफल त्रिगुणाधिकार एवं त्रितापमुक्ति हैं।

समग्र गायत्री मंत्र ''**ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्**'' का भावार्थ है - ''उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अन्तरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करें।''

प्रयोगशाला एवं संदर्भ ग्रन्थालय

ब्रह्मवर्चस के प्रथम तल पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय को स्थापित करने में सहायक तर्क-तथ्य और प्रमाण प्रस्तुत कर सकने में समर्थ एक साधन सम्पन्न प्रयोगशाला है। अपने आप में अनूठे इस तंत्र से जुड़ी एक संदर्भ लाइब्रेरी है, जिसमें ज्ञान-विज्ञान की देश-विदेश की सैकड़ों पत्रिकाएँ प्रतिमाह आती हैं, भाँति-भाँति के विश्वकोष एवं संदर्भग्रंथ हैं।

जैसा कि सर्वविदित है, चेतना से सम्बन्धित विधा अध्यात्म कहलाती है। यह चिरपुरातन है। इसके दो प्रमुख पक्ष हैं। दर्शन को भारतीय एवं पाश्चात्य, योग-मीमांसादि षट्दर्शन, विचार विज्ञान से सम्बन्धित खण्डों में बाँटा जा सकता है। सरलीकरण के लिए ईश्वर, जीव, प्रकृति की विवेचना करनेवाला ज्ञान-कर्म-भक्ति के, योगत्रयपर आधारित प्रतिपादन दर्शन माना जा सकता है। दर्शन स्वयं में एक विज्ञान है क्योंकि यह अकाट्य तर्कों एवं तथ्यों पर आधारित है। प्रयोग पक्ष में तप-तितीक्षा, आहार-साधना, कल्प-प्रक्रियाएँ, प्रायश्चित विधाएँ, ध्यान-धारणा, भाव-योग, तीर्थयात्रा एवं दान-पुण्य जैसे संकल्पों को समाविष्ट किया जाता है। यदि दर्शन को 'ब्रह्म' तथा प्रयोग व्यवहार को 'वर्चस्' कहा जाए, तो अत्युक्ति नहीं होगी। दोनों का युग्म ही व्यक्ति को 'ब्रह्मवर्चस्' सिद्ध साधक बनाता है। समग्र अध्यात्म विद्या के गुह्य रहस्यों का प्रकटीकरण 'थ्योरी एवं प्रैक्टिस' के मिलने पर ही बन पड़ता है।

प्राचीनकाल की बात अलग थी, जबकि शास्त्रवचनों को श्रद्धा के सहारे स्वीकार कर लिया जाता था। आज की स्थिति नितान्त भिन्न है। आप्तवचनों, वैदिक ऋषियों द्वारा उद्धृत तथ्यों-दृश्य एवं

अदृश्य जगत सम्बन्धी रहस्यों के बारे में प्रत्यक्षवाद - बुद्धिवाद का कथन है कि इन्हें तर्क, तथ्य, प्रमाण अथवा विज्ञान की कसौटी पर कसकर फिर मान्यता दी जाए। इससे कम में बीसवीं सदी की नई पीढ़ी उच्चस्तरीय प्रतिपादन को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं। विज्ञान ने स्वयं कई स्थानों पर 'सपोज' (माना जाए कि) के सिद्धान्त को स्वीकृति देकर अपना मार्ग सरल किया है, यहाँ तक कि मनोविज्ञान के क्षेत्र में फ्रायड की पतनोन्मुख पशुप्रवृत्ति वाले सिद्धान्त तक को मान्यता दे दी गई; किन्तु जब तत्त्वदर्शन-भारतीय अध्यात्म का प्रसंग आता है, तुरन्त प्रमाण माँगे जाते हैं। समय की इस माँग को देखते हुए कि पदार्थ और चेतना के मध्य ताल-मेल बिठाने, विज्ञान और अध्यात्म की दोनों शक्तियों के मध्य परस्पर सात्विक सहयोग बनाने हेतु ब्रह्मवर्चस ने यह प्रचण्ड पुरुषार्थ प्रारम्भ किया है। काम कठिन है, सरल नहीं। इसके लिए आधुनिक अन्वेषणों के प्रकाश में उन भावनात्मक आधारों को मजबूत किया जाना है, जिन्हें अभी तक जनमानस बड़ी श्रद्धा के साथ स्वीकार करता रहा है। इन प्रतिपादनों, अध्यात्म अनुशासनों, आहार-विहार के नियमों, साधना अनुबन्धों के मूल में भौतिक विज्ञान के भरपूर समावेश की पुष्टि की जानी है। यह सिद्ध किए बिना कोई इन उपचारों पर विश्वास न करेगा और अश्रद्धावश करेगा भी तो लाभान्वित नहीं हो पायेगा। इस अनास्था का दुष्परिणाम आज अनीति, अनाचार के रूप में देखा जा रहा है। इस संकट का निवारण जिस एक मात्र उपाय-अवलम्बन से बन सकता था, उसे ब्रह्मवर्चस ने गत वर्षों में अपने अथक प्रयासों से करके यह आश्वासन दिलाया है कि यह असम्भव नहीं है।

संदर्भ ग्रन्थालय में सतत् अनुसंधानकर्त्ताओं की टीम अध्ययनरत रहकर यह जानने का प्रयास करती है कि अध्यात्म विज्ञान के नाम पर प्रचलित मान्यताओं में से कितनी तथ्यपूर्ण-युगानुकूल हैं, कितनी निरर्थक हैं। साथ ही संसार की अन्याय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित मनीषी-वैज्ञानिकों के विचारों का मंथन कर पुरातन एवं आधुनिक मनीषा द्वारा प्रस्तुत पक्ष-विपक्ष के अनुभवों एवं निष्कर्षों का संग्रह किया जाता है। किन तथ्यों और प्रमाणों को मान्यता दी जाय एवं पुरातन से उनकी संगति बिठाई जाय, इस विचार मंथन का निष्कर्ष प्रयोग-परीक्षणों से तालमेल बिठाते हुए मिशन की तीनों पत्रिकाओं अखण्ड ज्योति, युग निर्माण योजना, युग शक्ति गायत्री में समय-समय पर प्रकाशित किया जाता है।

प्रयोग-अनुसंधान, ब्रह्मवर्चस की सर्वांगपूर्ण शोध का यह प्रत्यक्ष रूप है। प्रयोगशालाएँ विश्व में अनेकानेक हैं। प्रत्येक के अपने-अपने विषय हैं। कम्प्यूटर टेक्नालॉजी ने आज अनुसंधान प्रक्रिया को शिखर पर पहुँचा दिया है। आयुध विज्ञान से लेकर अन्तरिक्ष भौतिकी एवं काया के प्रयोग-परीक्षण की आज अत्याधुनिक मशीनें उपलब्ध हैं। ब्रह्मवर्चस की प्रयोगशाला अपने प्रयास में एकाकी कही जा सकती है, जबकि उपकरणों की दृष्टि से वह इतनी सम्पन्न नहीं है। तथापि अपने ही देश में उपलब्ध आधुनिक उपकरणों, कम्प्यूटर एवं इलेक्ट्रॉनिक्स के विभिन्न विधाओं से सम्बन्धित यंत्रों के द्वारा जो प्रयोग-परीक्षण का क्रम आरम्भ किया गया है, उससे सम्भावनाएँ बड़ी उज्ज्वल नजर आती हैं।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की मान्यता है कि मानव शरीर और मस्तिष्क, ऐसे प्रकृति विनिर्मित यंत्र हैं, जिनमें मनुष्यकृत समस्त अपकरणों की क्षमता विद्यमान है। सूक्ष्म शरीर की इतनी रहस्यमयी परतें हैं, जिनके तारतम्य बिठाते हुए प्रकृति के समस्त रहस्यों को समझने तथा शक्तियों को उपयुक्त मात्रा में उपलब्ध करने का सुयोग बैठ सके, यह पर्यवेक्षण जिन साधनाओं के आधार पर किया जा सकता है, उनका सही रूप में प्रयोग परीक्षण करने का प्रयास ब्रह्मवर्चस की शोध-प्रक्रिया के अन्तर्गत चल रहा है।

अध्यात्म और विज्ञान की समन्वित शोध के लिए अनेक दिशा धाराओं में प्रवेश करने और गहरे गोते लगाने की आावश्यकता है। इनमें से अपनी सामर्थ्य और रुचि के अनुरूप, कुछ विषयों को ब्रह्मवर्चस ने अपने प्रयोग-परीक्षण में सम्मिलित किया है। यह तात्कालिक उपक्रम है। अपनाये गये क्रियाकलापों को अगले दिनों और भी अधिक आगे बढ़ना है। एक-एक करके सभी धाराओं को और अधिक विस्तृत किया जा रहा है।

इन दिनों औषधीय जड़ी-बूटियों की सूक्ष्म शक्ति के-शरीर, मन, वातावरण, प्राणिजगत् एवं वनस्पतियों पर होने वाले प्रभावों को प्राथमिकता दी गयी है। वनस्पतियों को वाष्पीभूत करके उनके द्वारा किस प्रकार, कैसी चमत्कारी परिणतियाँ हस्तगत की जाती हैं, यह तथ्य सर्वप्रथम हाथ में लिया गया है। इस दिशाधारा को अग्निहोत्र से चिकित्सा - "**यज्ञोपैथी**" नाम दिया गया है। इस विषय में अब तक बहुत कुछ खोजा-अपनाया जा सका है। आशा की जानी चाहिए कि अगले दिनों और भी अधिक उत्साहवर्धक उपलब्धियाँ हस्तगत करने का अवसर हाथ लगेगा। इन्हीं वनौषधियों का सूक्ष्मीकरण-

खरलीकरण करके चूर्ण रूप में एवं क्वाथ बनाकर शारीरिक जीवनीशक्ति बढ़ाने में उनकी प्रभाव क्षमता का भी अध्ययन किया जा रहा है। एक संपूर्ण विश्वविद्यालय स्तर की स्थापना इस प्रक्रिया के अन्तर्गत शान्तिकुञ्ज परिसर में की जा रही है, जहाँ आधुनिकतम अनुसंधानों द्वारा आयुर्वेद को विज्ञानसम्मत सिद्ध करने का प्रयास किया जाएगा।

प्रस्तुत शोध का दूसरा पक्ष है- **''शब्दशक्ति''** । इसे अध्यात्म क्षेत्र में मंत्रशक्ति कहा जाता है। यह स्वर विज्ञान की, उच्चारण की विद्या है। पुराने सूत्र हाथ न लगने तक, इसे संगीत के प्रभाव के रूप में भी शोध का विषय बनाया जा सकता है, वह बनाया भी गया है। दीपक राग गाकर बुझे दीपक जलाने और मेघ मल्हार गाकर वर्षा करने जैसे सिद्धान्त तो हाथ लगे नहीं हैं पर इतना तो अवश्य सम्भव हो सका है कि संगीत को, नादब्रह्म स्तर पर सर्वोपयोगी सिद्ध करने की संभावना उभारी जा सके। शारीरिक व्याधियों-मानसिक आधियों को संगीत ठीक करता है। वह प्राणिजगत्-वनस्पति जगत् पर भी अपना असाधारण प्रभाव छोड़ता है। सप्त स्वरों को सप्त लोक कहा गया है। उन्हीं को सप्तप्राण या सप्त चक्रों का जीवनदाता भी कहा गया है। अगले दिनों इस आधार पर प्रामाणिक माध्यम से भी, गायकों की स्थिति में पहुँचकर, मंत्र-विद्या की रहस्यमयी परतों को खोला जा सकेगा। पर अभी तो विशिष्ट संगीत के उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण प्रभावों का ही आँकलन हो सकता है। ये उपलब्धियाँ भी मानव जीवन को सुखी-समुन्नत बनाने में कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं ।

ब्रह्मवर्चस का तीसरा प्रयोग **ध्यान-प्रक्रिया** पर है। प्रकारान्तर से इसे विचार-शक्ति का ही उच्चस्तरीय प्रभाव समझा जा सकता है। विचारों का बिखराव दूर करके, उन्हें एक केन्द्र पर समाहित कर लेने की विद्या ही ध्यान है। इसे साधना-क्षेत्र का प्राण कहा गया है। प्रस्तुत अन्वेषण में देखा गया है कि किस प्रकार के ध्यान, चेतना-क्षेत्र पर क्या प्रभाव डालते हैं? शरीर को सुविकसित बनाने, मनोबल बढ़ाने, बुद्धि-क्षेत्र को अधिक प्रखर करने में इस विद्या का क्या योगदान हो सकता है?

यह सार संक्षेप में उन प्रसंगों का परिचय है, जो ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान द्वारा हाथ में लिये गये हैं और लक्ष्य की दिशा में क्रमशः आगे बढ़ते हुए, चमत्कारी परिणामों की सफलतायें प्रस्तुत कर रहे हैं। इस कार्य के लिए एम.डी., एम.एस. स्तर के चिकित्सा-विज्ञानी तथा भौतिकी, रसायन-शास्त्र, जीव-विज्ञान, दर्शन आदि विषयों के पोस्ट ग्रेजुएट स्तर के विद्वान, वैज्ञानिक, मनीषी, अनवरत शोध प्रयासों में निरत रहते हैं। आगे लक्ष्य यह है कि एक-एक करके अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय हेतु, सभी आवश्यक प्रसंगों को प्रस्तुत शोध योजना में सम्मिलित किया जाता रहे। इस प्रकार उस केन्द्र पर पहुँचा जा सकेगा जहाँ, अध्यात्म और विज्ञान एक-दूसरे के प्रतिद्वन्दी न बनकर परस्पर सहयोगी, पूरक और प्रगति में समान भागीदार बनकर रहेंगे।

वनौषधि उपचार एक-संजीवनी विद्या

वनस्पतियाँ इस पृथ्वी पर, प्रकृति का भिन्न प्रकार का प्राणवान उत्पादन हैं। मनुष्य सहित सभी प्राणी, उन्हीं पर निर्भर रहते हैं। आहार के रूप में अन्न, शाक, फल आदि वनस्पतियों के ही भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार हैं। पशु भी घास, दूब आदि के रूप में उन्हीं से आहार पाते हैं। कीड़े आदि भी उन्हीं के सहारे जीवित रहते हैं। माँसाहारी प्राणी भी शाकाहारी जीवों को ही भोजन बनाते हैं। प्रकारान्तर से उनका भोजन भी वनस्पतियों पर ही निर्भर है।

भोजन के अतिरिक्त जमीन को शक्ति देनेवाली खाद भी वनस्पतियों के माध्यम से ही प्राप्त होती है। तरह-तरह के रसायन भी उनसे प्राप्त होते हैं। दुर्बलता दूर करने के लिए उपयोगी रसायन वनस्पतियाँ ही देती हैं। शरीर के रोगाणुओं से निपटने में भी उन्हीं की भूमिका रहती है। इस प्रकार वनस्पतियाँ जीवन निर्वाह का आधार तो हैं ही, दुर्बलता और रुग्णता के निवारण में भी उन्हीं का योगदान है।

पृथ्वी पर वनस्पतियाँ, प्राणियों के लिए क्या-क्या योगदान देती हैं ? इसका अध्ययन गहराई से किया जाय, तो उनके अनुदानों के प्रति नतमस्तक ही होना पड़ता है। वायु में शुद्धता वाले अंश वनस्पतियों के अनुग्रह से जुड़ते हैं। बादलों को धरती पर बरसने के लिए वही आकर्षित करती हैं। खाद्य को पकाने के लिए आग का ईधन उनसे ही प्राप्त होता है। मकान बनाने में, उपकरण तैयार करने में, अनेक उद्योगों के लिये भी किसी न किसी रूप में उनका उपयोग करना पड़ता है। कागज से लेकर कपड़े तक में वनस्पतियों का ही प्रयोग होता है। यह कहना गलत नहीं है कि वनस्पतियाँ न होतीं तो जीवधारियों का अस्तित्व न रहता।

खाद्य के रूप में कौन प्राणी किस वनस्पति का उपयोग, कब किस रूप में करे, इस जानकारी को आहार-विज्ञान कहते हैं। इस विद्या को जीवन-धारिणी विद्या भी कह सकते हैं। सही प्रयोग होने पर वनस्पतियाँ अमृत-तुल्य बन जाती हैं और दुरुपयोग होने पर विष जैसी प्रतिक्रिया भी करती हैं। अनुभवों के आधार पर आहार के सूत्र काफी पहले ही खोजे जा चुके हैं। रोग-निवारण के लिए, उपचार के लिए भी वनौधियों के उपयोग के सूत्र आयुर्वेद ने निकाले और प्रयुक्त किए हैं। इसके लिए तत्त्वदर्शी स्तर के शोधकर्ताओं को लम्बे समय तक खोज, प्रयोग, सुधार का क्रम चलाना पड़ा था।

दुर्बलता और रोगों का निवारण मनुष्यों की एक बड़ी समस्या है। दुर्बलता मनुष्य को लाचार बना देती है, वह इच्छित पुरुषार्थ नहीं कर पाता। इसलिए सबकी इच्छा शरीर को स्वस्थ और सुन्दर रखने की होती है। स्वास्थ्य के नियम इसीलिए हर व्यक्ति को सीखने-समझने पड़ते हैं। दुर्बलता से आगे की व्यथा "रुग्णता" है। जो रोग शरीरगत होते हैं, उन्हें "व्याधि" तथा मानसिक रोगों को "आधि" कहा जाता है। दोनों में से कोई भी हो, रुग्णता हर दृष्टि से भयानक होती है। उसके कारण पीड़ा सहनी पड़ती है, परिचर्या के लिए दूसरों का सहारा लेना पड़ता है। कार्य क्षमता घटने से उपार्जन घटता है और अभाव घेर लेते हैं। रोगी के आश्रितों पर विपत्ति टूट पड़ती है। रोगी मौत के पास खिसकता जाता है। इस लिए उपयुक्त चिकित्सा के साधन विकसित करने पड़ते हैं।

आजकल तीव्र प्रतिक्रिया पैदा करने वाले रसायनों से उपचार किया जाने लगा है। इसके लिए विष भी प्रयोग में लाये जाते हैं। मारक, शामक दवाओं की अनेक किस्में हैं पर वो इच्छित क्रिया के

साथ प्रतिक्रियाएँ भी उत्पन्न करती हैं। उतावले रोगी और चिकित्सक उनका उपयोग तो करते हैं; परन्तु दूरगामी परिणाम देखने पर लगता है कि लाभ के लिए किए गए उपचारों ने, शरीर को पहले से भी गयी-गुजरी स्थिति में पहुँचा दिया। सही चिकित्सा विधि का जब कभी पता लगाया जाएगा, तब शरीर पोषण की तरह ही, रोगों के उपचार के लिए भी वनस्पतियों को ही आधार बनाया जाएगा।

वनस्पतियों से प्राप्त रसायन और खनिज, शरीर में सहज रूप से रम जाते हैं। अन्य रसायन तथा खनिज शरीर में अधिक समय टिक नहीं पाते, प्रकृति द्वारा बाहर कर दिये जाते हैं। शरीर उन्हें सजातीय मानकर आत्मसात नहीं करता। विजातीय तत्त्वों को अंदर ले जाने, फिर उनकी सफाई करने में शरीर की शक्तियों का क्षय ही होता है। इसलिए शरीर के लिए अनिवार्य समझे जाने वाले तत्त्वों की पूर्ति, वनस्पतियों के माध्यम से करना अधिक कारगर माना जाता है।

जिन दिनों वनौषधि विद्या अपने सही रूप में थी, तब उसे संजीवनी विद्या कहा जाता था। लक्ष्मण की मूर्छा दूर करने से लेकर, वृद्ध च्यवन को युवा बनाने जैसे चमत्कारी प्रतिफल सामने आते रहते थे; किन्तु अब तो उनका प्रचलन मिटने के साथ-साथ पहचान भी नहीं रही। औषधि से मिलती-जुलती कोई भी पत्ती उसके नाम से चला दी जाती है। उखाड़ते समय वह तैयार हो पायी थी? पकी थी या नहीं? यह भी ध्यान नहीं दिया जाता। फिर उसे लम्बे समय तक बोरियों भरकर रख लिया जाता है। वे प्रयोग के समय तक प्राणहीन हो चुकी होती हैं। किस क्षेत्र में कौन सी औषधि अपने पूरे गुण प्राप्त कर पाती है, यह जानकारी भी बहुत महत्त्व की है। हिमालय की संजीवनी बूटी यदि लंका में उगायी जा सकती, तो सुषेण वैद्य हनुमान को इतनी दूर क्यों भेजते? नारियल का पेड़ हर

जगह नहीं फलता। मैसूर का चन्दन अन्य स्थानों पर बढ़ता है पर सुगन्धि पैदा नहीं होती। भूमि और जलवायु के संयोग से ही वनस्पतियों के गुणों का विकास होता है।

मनुष्य जिस क्षेत्र में पैदा होता या रहता है, उसके लिए उसी क्षेत्र का उत्पादन उपयोगी होता है। शाक, फल, अन्न सब में यही बात है वनौषधियों के सम्बन्ध में भी यही दृष्टि रखनी पड़ती है। कुछ आपद्कालीन अपवादों को छोड़कर साधारण रूप से यही सिद्धान्त काम करता है। शरीर रचना में जिस जलवायु का योगदान रहा है, उसी जलवायु में उत्पन्न खाद्य और औषधियाँ शरीर के लिए अधिक सजातीय होती हैं। इसलिए उनका उपयोग अधिक कारगर सिद्ध होता है। वनौषधियों के उपयोग में इन दिनों इन सब बातों के प्रति उपेक्षा ही बरती देखी जाती है। इसी कारण उसका वैसा प्रभाव नहीं होता जैसा शास्त्रों में लिखा है।

हमें अपनी भूल सुधारनी होगी। संजीवनी-विद्या के रूप में जानी जाने वाली वनौषधि-चिकित्सा को, उसके वास्तविक रूप में लाने के लिए प्रबल प्रयत्न करना होगा। तभी इस अमोघ कहे जाने वाले 'रामबाण' अस्त्र का सही लाभ जनसाधारण तक पहुँचाया जा सकेगा।

अमीर लोग तो बहुत कीमती दवायें जहाँ-तहाँ से मँगा सकते हैं; परन्तु अपने निर्धन देश की आम जनता के लिए सर्वसुर्लभ जड़ी-बूटी चिकित्सा ही कारगर बैठती है। इसलिए अपने चिकित्सालयों को अधिक खर्चीला न होने देने के लिए जड़ी-बूटियों का व्यापक उत्पादन और सही विधि-विधान जीवन्त बनाना

होगा। स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों के पालन का पक्ष भी लोगों को बताया-समझाया जाना आवश्यक है। चिकित्सा-विज्ञान में, इस विद्या का भी समुचित समावेश किया जाना आवश्यक हो गया है।

रसायनों पर आधारित पाश्चात्य चिकित्सा-प्रणाली के विपरीत, वनौषधि उपचार का लक्ष्य होता है- शरीर में स्वस्थ जीवकणों की शक्ति और मात्रा बढ़ाना। बढ़ी हुई स्वस्थता, बीमारियों का कचरा धकेल कर बाहर निकालने में समर्थ हो जाती है। इस पद्धति में रोगों से पूरी तरह पीछा छूटने में कुछ समय लग सकता है; परन्तु जो लाभ होते हैं, वे स्थाई होते हैं। बढ़ी हुई जीवनीशक्ति, रोगों को दूर करने के साथ-साथ समर्थता के हर पक्ष को भी पुष्ट करती है। इसलिए जड़ी-बूटी चिकित्सा से रोग-मुक्ति और सामर्थ्य बढ़ने के दोहरे लाभ मिलते हैं।

रसायनों पर आधारित चिकित्सा जादू के खेलों जैसी सामयिक चमक तो दिखा देती है; परन्तु उसके मारक गुणों के कारण होने वाली जीवनी-शक्ति की हानि को भुला दिया जाता है। ऐसी दवायें चमत्कारी तो दिखती हैं; परन्तु कुछ समय बाद वे अन्य नशों की तरह आदत में शामिल हो जाती हैं। तब उनका प्रभाव होना भी समाप्त हो जाता है।

जड़ी-बूटियाँ सौम्य और हानिरहित होती हैं। उनका प्रभाव शरीर के साथ-साथ मन:स्थिति पर भी पड़ता है। मस्तिष्क के असंतुलन दूर होते हैं। सौम्य-सात्विक विचारों का प्रवाह उठने लगता है। 'जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन' की कहावत केवल आहार पर ही नहीं, औषधियों पर भी लागू होती है। सौम्य जड़ी-बूटियों से शरीर के रोगों के साथ मानसिक अस्त-व्यस्तता से भी

छुटकारा मिलता है। बढ़ते हुए सद्विचार, स्वभाव में मिली हुई अवांछनीयताओं को दूर करते हैं। दूरदर्शी विवेकशीलता बढ़ती है। शरीर और मन दोनों को चिरस्थायी लाभ प्राप्त होते हैं।

वनस्पतियाँ ईश्वर-प्रकृति द्वारा विकसित आदर्श सहयोगी हैं। जड़ी-बूटियों के रूप में वे आरोग्य और स्वास्थ्य बढ़ाने की असाधारण शक्ति रखती हैं। उन्हें अपनाया जाना हर दृष्टि से लाभदायक है।

इस विद्या को विज्ञान सम्मत बनाया जाए

सही और शुद्ध रूप में होने पर ही कोई वस्तु अपना ठीक-ठीक प्रभाव दिखा पाती है। नकली वस्तुएँ उपहास का कारण बनती ही हैं, उनसे असफलता और असंतोष भी उत्पन्न होते हैं। नकली सोना, नकली तलवार, नकली आटा, नकली दवा आदि मन बहलाने भर के लिए अपनी झलक दिखला पाते हैं। बाद में तो वे उपेक्षा के गड्ढे में फेंक ही दिये जाते हैं। खोटे सिक्कों का भी यही हाल होता है। जानवरों के शकल के खिलौने सस्ते मोल में बिकते हैं; परन्तु उनसे सिर्फ खेला जा सकता है, वे जानवरों जैसे उपयोगी नहीं हो सकते।

इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि जड़ी-बूटियों के नाम पर नकली घास-पात ही बिकता देखा जाता है। मिलती-जुलती शक्ल की कई वनस्पतियाँ होती हैं। दुर्लभ जड़ी-बूटियों के स्थान पर वे रख दी जाती हैं- जिनकी भरमार होती है। आम आदमी उनके बीच फर्क कैसे निकाल सकता है? एलोपैथिक दवाएँ निर्धारित समय के बाद गुणहीन ही नहीं, हानिकारक भी हो जाती हैं। जड़ी-बूटियाँ हानिकारक नहीं होतीं; परन्तु नौ माह से एक वर्ष तक भरकर रखने के बाद निर्जीव-बेकार तो हो ही जाती हैं। परन्तु पन्सारी लोग एक बार भरकर रखी जड़ी-बूटियाँ वर्षों तक बेचते रहते हैं। कुटी-पिसी

दवाएँ तो और भी जल्दी बेजान हो जाती हैं; परन्तु उन्हें फेंककर नुकसान उठाना कौन पसंद करता है ? ऐसी स्थिति में प्रामाणिकता और गुण कहाँ रह सकते हैं ? इस घपले को सुधारना वह पहला चरण है, जिसके बिना जड़ी-बूटियों की उस गरिमा को फिर से जीवित नहीं किया जा सकता, जिसके कारण आयुर्वेद संसार भर में प्रसिद्ध था। उसका प्रभाव सभी जगह एक स्वर से स्वीकारा जाता था।

उस पुरातन गरिमा को फिर से उभारना है, तो ऐसी व्यवस्था बनानी होगी कि वनौषधियाँ अपने असली रूप में मिलती रहें। उनके उत्पादन पर भी पूरा ध्यान देना होगा। अभी तो इकठ्ठा करने वाले उन्हें जड़ से ही खोद लाते हैं। उन्हें फिर से पनपने का मौका ही नहीं मिलता। बीज भी कभी बिखर पाते हैं, कभी नहीं । ऐसी स्थिति में एक वर्ष जहाँ वे काफी मात्रा में होती हैं, वहाँ अगले वर्ष उनका अता-पता ही नहीं रहता। यह उपेक्षा दूर की जानी चाहिए। जिस प्रकार अन्न, सब्जी, मसाले आदि के उत्पादन को महत्त्व दिया जाता है, उनके लिये जमीन सुरक्षित रखी जाती है, उसी प्रकार जड़ी-बूटियों की भी खेती की जानी चाहिए। उसके विज्ञानसम्मत ढंग अपनाए जाने चाहिए।

आजकल प्रचलन के अनुसार घसियारे किसी जड़ी-बूटी से मिलते-जुलते घास-पात को ले आते हैं और पंसारी के हाथों बेच आते हैं। वैद्य उसी को कूट-पीसकर रोगियों को देते रहते हैं। यही चिन्ह-पूजा चलती रहती है। यह प्रचलन बन्द होना चाहिए। सही जड़ी-बूटियाँ पहचानी और प्रयुक्त की जानी चाहिए। आरम्भ सही हुए बिना परिणाम सही नहीं हो सकते।

भूमि और जलवायु (फ्लोरा) के अनुरूप विभिन्न वनौषधियाँ विभिन्न क्षेत्रों में उगायी जाएँ। उत्पादन एक केन्द्रीय जगह पर संग्रहीत किया जाय और वहाँ से, जिन्हें जिस वस्तु की, जिस रूप में उपलब्ध कराए जाने की माँग है, उस आवश्यकता को पूरी करते रहा जाय। यह प्रबन्ध सरकार द्वारा भी हो सकता है और निजी स्तर पर भी व्यावसायिक उत्पादन कराया जा सकता है। प्रामाणिक संग्रह व्यवस्था बन जाने पर आधी मात्रा में वह कठिनाई दूर हो जाएगी, जिसके कारण कि आयुर्वेद का प्रगतिरथ एक प्रकार से अड़ा खड़ा है।

शान्तिकुञ्ज ने जनसाधारण को स्वास्थ्य का महत्त्व समझाते हुए और उसे भारतीय परिस्थितियों में उपयुक्त बनाने के लिए अब उपलब्ध अपने नये विस्तृत परिसर में अपनी छोटी सी भूमि में यह उत्पादन कार्य सुनियोजित रीति से आरम्भ किया है। अपने प्रभाव क्षेत्र में जहाँ भी बन पड़ा है, वहाँ उस क्षेत्र की भूमि तथा जलवायु के अनुरूप वनौषधियों के उत्पादन का प्रबन्ध किया है। आदान-प्रदान के आधार पर उनका केन्द्रीय संचय भी होता रहता है। यह प्रयत्न फिलहाल छोटे आकार में है पर आशा यह की गई है कि क्रमशः यह एक आयुर्वेदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट का स्वरूप ले लेगा। प्रामाणिकता कि कसौटी पर कसे जाने पर महत्त्व देखते हुए आवश्यकता अनुभव की जायेगी, गुणविहीन-सस्ती वस्तुओं से संतुष्ट होते रहने की आदत छूटेगी। वह किया जाएगा जिसकी जड़ी-बूटी विज्ञान को पुनर्जीवित करने के लिए नितान्त आवश्यकता है। देश-विदेश में आयुर्वेद का गौरव प्राचीन काल की तरह पुनः प्रतिष्ठापित किया जा सकेगा।

इस दिशा में एक कठिनाई और भी है कि समान आकार-प्रकार की कितनी ही वनस्पतियाँ होती हैं। इनमें से कौन असली और कौन नकली है, इसकी पहचान की कसौटी भी अब हाथ से चली गई है। खोदनेवाले, इकठ्ठा करने-खरीदने वाले, निर्माता-चिकित्सक तथा सेवनकर्ता, इस संदर्भ में सभी समान रूप से अन्धकार में हैं। कोई भी छाती ठोक कर यह नहीं कह सकता कि हम सही वस्तु के लिए ही श्रम तथा धन खर्च कर रहे हैं। उपेक्षा ने पहचान की आवश्यकता को भी नजर अन्दाज कर दिया है। अब इस दिशा में भी नये प्रयत्न करने होंगे और असली-नकली के अन्तर को सभी समझ सकें, इसकी व्यवस्था करनी होगी। ऐसा एक सुनियोजित प्रयास, शान्तिकुञ्ज की साधन सम्पन्न प्रयोगशाला ने अपनी सीमित क्षमता के आधार पर आरंभ कर दिया है।

इस अनुसंधान के साथ एक असमंजस और भी जुड़ गया है कि एक ही औषधि को अनेक रोगों में प्रयुक्त किये जा सकने का आयुर्वेद में उल्लेख है। सम्भव है उस प्रकार का प्रतिपादन करने वालों ने अनुपान भेद की बात को ध्यान में रखा होगा और सोचा होगा की कम औषधियों से अनेक रोगों की चिकित्सा बन पड़ने की सुगमता बनी रहे तो ठीक है।

वह चिन्तन और प्रबन्धन अपनी जगह पर सही था पर आज की कठिनाई यह है कि हर कोई सरलता चाहता है, उलझन भरे झंझटों में पड़ने से कतराता है। उसके लिए जो विशाल अध्ययन एवं अनुभव चाहिए, उसकी कौन प्रतीक्षा करे? आज तो भोजन भी बना-बनाया खरीदने की सोची जाती है। चूल्हा गरम करने के झंझट से जिस प्रकार पाश्चात्य जगत में छुटकारा पाने का प्रयत्न किया जा

रहा है, उसी प्रकार चिकित्सा -क्षेत्र में भी यह चाहा जा रहा है कि नियत रोगों की नियत औषधियाँ निर्धारित हों। अनुपान आदि के झंझटों में न पड़ना पड़े। ऐलोपैथी, होम्योपैथी आदि चिकित्सा विधियों में ऐसे ही निर्धारण हैं। आयुर्वेद चिकित्सक भी व्यवहार में इसी सरलता को बरतते हैं। वे एक ही औषधि को अनुपान भेद से अनेक रोगों में प्रयुक्त करने के पक्ष में दिखाई नहीं देते। नियत रोग, नियत औषधि की पद्धति ही उन्हें रास आती है। सम्भवत: अगले दिनों यही विधा अधिक सरल जान पड़ेगी और इसी को अपनाये जाने की प्रथा चल पडेगी। ऐसी दशा में जड़ी-बूटी विज्ञान के अनुसंधानकर्ताओं के लिए यह भी आवश्यक हो जाता है कि वे अमुक रोग की अमुक दवा निश्चित करने की माँग एवं सुविधा को सरल, सम्भव बनाने के लिए नये अनुसंधान करें। देखना यह होगा की किन औषधियों में पाये जाने वाले कौन से रासायनिक घटक, किन रोगों से निपट लेने में किस सीमा तक समर्थ होते हैं? यह अनुसंधान उसी स्तर का है, जिसे अपनाकर एलोपैथी में नई औषधियों का आविष्कार और प्रचलन होता है। हर नयी औषधि को प्रयोगशालाओं में कठिन परीक्षा देनी होती है। साथ ही उसका प्रयोग अन्य प्राणियों पर करके, यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि वह आविष्कार मनुष्य के लिए किस सीमा तक उपयोगी सिद्ध हो सकेगा? किस रोग के निवारण में किस स्तर का प्रभाव छोड़ सकेगा? आयुर्वेद के क्षेत्र में भी इस स्तर पर नये सिरे से प्रयोग करने की आवश्यकता है। इसके बिना तर्क, तथ्य और प्रमाण प्रस्तुत करने की बुद्धिवादी जिज्ञासा का समाधान संभव न हो सकेगा।

शान्तिकुञ्ज के ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान ने इस आवश्यकता का महत्त्व गंभीरतापूर्वक अनुभव किया है और अपनी शोध श्रृंखला में इस पक्ष को भी समुचित स्थान दिया है कि वनौषधियों के प्रभाव से किन रोगों पर क्या प्रभाव पड़ता है? इसका अन्वेषण उसी स्तर पर किया जाय, जिस प्रकार कि एलोपैथी विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है। यही कारण है कि यहाँ वनौषधि की जाँच-पड़ताल, सही पहचान हेतु आधुनिक यंत्र प्रयुक्त होते हैं तथा रोग का निदान पैथलॉजी एवं इलेक्ट्रोफिज़ियोलॉज़ी को आधार बनाकर किया जाता है। यहाँ वात, पित्त, कफ के सिद्धान्त को नकारा नहीं जा रहा; अपितु समय की आवश्यकता, यंत्रों की उपलब्धि और विज्ञान के विकास को दृष्टिगत रखकर एक प्रामाणिक परीक्षण की आवश्यकता समझायी जा रही है।

प्राचीन काल के आयुर्वेद निर्धारण यद्यपि प्रामाणिकता से युक्त हैं, फिर भी नये युग के बढ़ते बुद्धिवाद द्वारा और प्रामाणिकता जानने की माँग को क्या कहा जाय? उसे अमान्य भी नहीं ठहराया जा सकता और शास्त्र-वचन को, पुरातनकथन को सही मान लेने की बात कहकर समझाया भी नहीं जा सकता। इन दिनों हर नियुक्ति में परीक्षा प्रणाली का समावेश है। ऐसी स्थिति में किसी प्रकार काम चलाती रही जड़ी-बूटी विद्या के संबंध में सर्वसाधारण को स्वीकारने के लिए किस प्रकार दबाव डाला जाय? उत्तर एक ही है कि समय की माँग को स्वीकारते हुए वनौषधियों की प्रभाव क्षमता को, नये सिरे से विज्ञानसम्मत जाँच की कसौटी पर कसा जाय।

प्रभाव-सामर्थ्य की जाँच पड़ताल के अतिरिक्त, कितने समय उपरान्त किस वनौषधि की गुणवत्ता समाप्त हो जाती है? इसका शोध-अन्वेषण भी शान्तिकुञ्ज की प्रयोगशाला की साक्षी में किया जाता है। इन निष्कर्षों से यह समझना संभव हो गया है कि कितने समय उपरान्त किस औषधि को गुणहीन घोषित करके उसे व्यवहार के अयोग्य ठहरा दिया जाय। अबतक ऐसे प्रतिबंध ऐलोपैथी में ही देखने को मिलते थे। वनस्पतियों के बारे में भी धारणा इतनी भर थी कि उन्हें एक वर्ष तक ही प्रयोग में लाया जाय पर अब नए शोध-अनुसंधानों ने इस मान्यता में संशोधन किए हैं कि कुछ जल्दी ही गुणहीन हो जाती हैं। उनपर बदलते मौसम का अधिक प्रभाव पड़ता है। इन सारी खोजबीन के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि किस रूप में, किस औषधि की कच्ची स्थिति में अथवा विनिर्मित होने पर उसकी गुणवत्ता बनी रहती है या चली जाती है? इस निर्धारण से भविष्य में यह बन पड़ेगा कि गुणहीन वस्तुओं को विक्रेताओं या निर्माताओं को अनावश्यक समय तक उपयोग करते रहने की छूट न मिले। उन्हें नष्ट कर दिया जाना अनिवार्य हो। यह ऐसे प्रयास हैं, जिनके आधार पर जड़ी-बूटी उपचार को विज्ञानसम्मत एवं प्रामाणिक मानने के लिए विवश होना पड़ता है। भारत ही नहीं वरन् समस्त पिछड़े विश्व के लिए ऐसी विज्ञानसम्मत उपचार पद्धति सरल, सस्ती और सुविधा भरी सिद्ध हो सकेगी।

वनौषधियों का वाष्पीकृत स्थिति में प्रयोग

वनौषधियों का मोटा प्रयोग यही चलता आया है कि उन्हें ताजी स्थिति में हरा रहते हुए तोड़कर , सिल पर पीस और पानी में घोलकर पिया जाय अथवा चटनी की तरह बनाकर चाट लिया जाय। यह कल्क-प्रक्रिया का प्रचलित रूप है। छाया में सुखा लेने के बाद उन्हें कूट-छानकर चूर्ण बना लेने तथा पानी, मधु या किसी प्रवाही द्रव के साथ गले उतारने में सुविधा रहती है। सेवन की मात्रा बढ़ती-घटती न रहे, इसके लिए उन्हें गोली के रूप में, वटिका आदि के रूप में भी विनिर्मित कर लिया जाता है। गोली में समाविष्ट द्रव्य में कुछ ऐसे स्वरस मिलाये जाते हैं, जिनसे उनका आकार स्थिर रहे और गुणवत्ता अपेक्षाकृत अधिकाधिक स्थिर स्थिति में बनी रहे। यह सभी रूप ऐसे हैं जिनमें वनौषधियों को ठोस रूप में सेवन किया जाता है।

पदार्थ के तीन रूप सभी को विदित हैं-ठोस, द्रव और वाष्प (गैस)। जड़ी-बूटियों का तीनों ही रूपों में सेवन किया जा सकता है। उनकी गुणवत्ता भी आकार के सूक्ष्म होने के अनुपात में उसी क्रम से अधिक प्रभावोत्पादक होती चली जाती है। ठोस रूप की चर्चा ऊपर हो चुकी। द्रव रूप में आसव, अरिष्ट, क्वाथ, अर्क, सिरप, ड्राप्स आदि का रूप दिया जाता है। ठोस आकार को आमाशय जब पचाता है, तो वह रस रूप में परिवर्तित होकर शरीर का अंग बनता है। द्रव रूप में उसका पाचन सरल पड़ता है। ठोस आहार की तुलना में रस, छाछ, दूध, पानी आदि प्रवाही वस्तुएँ अपेक्षाकृत जल्दी पचती हैं। इसीलिए आयुर्वेद चिकित्सक यथास्थिति, यथा आवश्यकता, औषधियों को द्रव रूप में देने की उपयोगिता अधिक अनुभव करते हैं।

ठोस पद्धति में औषधि को अधिक प्रभावी बनाने का एक विशेष तरीका यह है कि उनकी घुँटाई-पिसाई अधिक देर तक की जाय। इससे उनके कण अधिक बारीक हो जाते हैं। उसमें दबी हुई अणु शक्ति उभर आती है और प्रसुप्त शक्ति के जागृत होने पर अधिक प्रतिफल उपस्थित करती है। आयुर्वेद शास्त्रों में जहाँ-तहाँ अधिक पीसने-घोंटने, अधिक समय तक अनेक रस-पुट देकर घोंटने के भी विधान हैं, ताकि औषधियों की प्रसुप्त शक्तियों को जगाने का विशेष लाभ उपलब्ध हो सके।

होम्योपैथी, बायोकेमिक, डीशेन की निर्माण पद्धति में भी इस सूक्ष्मीकरण का महत्त्व अधिक जोर देकर प्रतिपादित किया गया है। इस प्रयोग को सही व अधिक प्रभावशाली पाया गया है। इसके लिए शान्तिकुञ्ज की प्रयोगशाला में उन यंत्र उपकरणों को लगाया गया है, जो लम्बे समय तक कुटाई-पिसाई, घिसाई आदि का उपक्रम जारी रख सकें। पुराने खरल आदि का समय अब नहीं रहा। बॉल हैमर मिल एवम् पल्वेराइज़र के रूप में पिसाई, घुटाई करने वाले उपकरण अब बनने लगे हैं। ऐसे ही शक्तिशाली संयंत्र शान्तिकुञ्ज की प्रयोगशाला में लगे हैं, जिसमें जाँची-परखी, धोकर छाया में सुखायी हुई कचरारहित औषधियों की पिसाई की जाती तथा आवश्यकता पड़ने पर उनकी सामर्थ्य बढ़ाने के लिए उनकी ताजी स्थिति में निकाला हुआ स्वरस मिलाकर, फिर घुटाई की जाती है। इस प्रकार शक्ति सामर्थ्य उसी आधार पर कई गुणा हो जाती है, जिस आधार पर शतपुटी, सहस्त्रपुटी भस्में बनायी जाती हैं। सूक्ष्मीकरण प्रक्रिया का यह अभिनव प्रयोग है।

सही निष्कर्ष प्राप्त करना हो तो अनिवार्य है कि वनौषधियों को अपने ही उद्यान में उगाया जाय। जो जिस क्षेत्र की हो उसे पैदा कर वहीं से उसे उपलब्ध किया जाय। परिपक्व स्थिति में ही उन्हें उखाड़ा जाय। अन्वेषणों, उपकरणों द्वारा यह पता लगाया जाता रहे कि पौधा असली है या नकली? यह सब ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनके चलते शान्तिकुञ्ज के उत्पादन अधिक सही होने के कारण अपेक्षाकृत अधिक गुणकारी सिद्ध होते हैं। कौन सी औषधि किस प्रजाति की है व कौन सी प्रजाति किस रोग में ली जानी चाहिए, उसके किस अंग में कार्यकारी घटक अधिक मात्रा में व प्रभावी स्थिति में होंगे, इसका अध्ययन विभिन्न प्रयोगशालाओं में होता रहा है। उन अध्ययनों को सामने रख कर यहाँ के वैज्ञानिक फार्मेकोग्नोसी (शुद्धाशुद्ध परीक्षा) पद्धति का आश्रय लेकर, स्टीरियो माइक्रोस्कोप्स, माइक्रोटोंम तथा रासायनिक प्रक्रिया द्वारा यह जाँचते हैं कि वर्तमान परिस्थितियों में विभिन्न रोगों में किस औषधि को दिया जाना उचित होगा तथा सही-शुद्ध औषधि कौनसी है, जिसके अमुक अंग को सूक्ष्मीकृत स्थिति में प्रयुक्त किया जाना चाहिए?

शान्तिकुञ्ज के वैज्ञानिक अनुसंधान में जड़ी-बूटी उपचार को प्रयोग स्तर पर हाथ में लिया गया है, व्यापारिक उत्पादन स्तर पर नहीं। यों इस सुविद्या का स्थायी कार्यकर्त्ता, आगन्तुक शिविरार्थी, दर्शनार्थी सतत् लाभ उठाते रहते हैं। आयुर्वेद एवं एलोपैथी के स्नातकोत्तर स्तर तक प्रशिक्षित अनुभवी चिकित्सकों को यहाँ कंधे से कंधा मिलाकर प्रयोग-परीक्षण में निरत देखा जा सकता है।

वनौषधि उपयोग की प्रक्रिया का एक तीसरा पक्ष और भी है, जो पुरातन काल में अत्यधिक प्रचलित था पर मध्य युग में उस मूल विद्या को भुला ही दिया गया। साथ ही पेचीदे जाल-जंजालों का समावेश हो जाने से यह जटिल, खर्चीला और कठिन भी हो गया । आडम्बरों के आवरण में उसकी वास्तविकता भी छिप गयी । अब उस प्रयोग को नये सिरे से जन समुदाय के समक्ष लाया गया है और नये सिरे से उसे विज्ञानसम्मत परीक्षण प्रक्रिया से गुजारा जा रहा है। यह आधार है- **अग्निहोत्र**, जिसमें वाष्पीभूत वनौषधियों द्वारा मानव समूह की अथवा आस-पास के वातावरण की चिकित्सा की जाती है।

यज्ञ और अग्निहोत्र में अन्तर है। इसे भली-भाँति समझा जाना चाहिए। यज्ञ एक धर्मानुष्ठान है, उसमें भावनाओं की शक्ति का-मंत्र शक्ति का उच्चस्तरीय समावेश आवश्यक है। यज्ञ हेतु याजकों का कड़ाई से चुनाव किया जाता है। प्रयोग में आने वाली सभी वस्तुएँ अभिमंत्रित करनी पड़ती हैं। निर्धारित विधि-विधानों का शास्त्रोक्त विधि से प्रयोग करना पड़ता है। शुद्धता के हर पथ पर अध्यात्म दृष्टिकोण से विचार करना पड़ता है। प्रयोक्ता और ग्रहीता-पुरोहित और यजमान दोनों को ही व्रतशील बनना पड़ता है। संकल्प शक्ति का समावेश उसके हर पक्ष में होता है। प्रयोक्ता पक्ष के ब्रह्मा-आचार्य-अध्वर्यु-उद्गाता अपने-अपने स्तर के उत्तरदायित्व निभाते हैं। प्रत्येक में कुछ न्यूनतम योग्यताएँ अनिवार्य होती हैं। यजमान पत्नी समेत बैठता है। उन दोनों को भी अधिक व्रत-संकल्पों के साथ अपनी सौम्य सात्विकता को उभारना पड़ता है। संलग्न पुरोहित वर्ग का स्तर तो और भी उच्चकोटि का होना चाहिए। मंत्रोच्चार शुद्ध एवं

स्वर संयत होना चाहिए। समिधाओं, शाकल्य, घृत आदि में भी निर्धारित पवित्रता और विशिष्टता का समावेश आवश्यक होता है। यह समूची प्रक्रिया पुरातन काल के याज्ञिकों को विदित थी और वे जानते थे कि किस प्रयोजन के लिए, विधान उपहार के लिए किन वस्तुओं, द्रव्यों, पदार्थों और मंत्र-सूक्तों का किस प्रकार प्रयोग होना चाहिए। आज तो इस संदर्भ में परिपूर्ण जानकारी किन्ही विरलों को ही रह गयी है। वह पीढ़ी भी क्रमशः समाप्त होती जा रही है। अधूरी जानकारी के कारण उसका वैसा प्रतिफल भी नहीं होता, जैसा कि होना चाहिए था।

शान्तिकुञ्ज की ब्रह्मवर्चस शोध प्रक्रिया में अग्निहोत्र विधा को ही हाथ में लिया गया है। इस प्रकरण को पूरा कर लेने के उपरान्त ही सम्भवतः यज्ञ विज्ञान पर हाथ डाला और उसे समग्र रूप में सम्पन्न कर विज्ञानसम्मत प्रमाणित कर पाना सम्भव हो सकेगा। अभी तो उपलब्ध वैज्ञानिक आधारों का प्रत्यक्षवादी पक्ष हाथ में लेते हुए अग्निहोत्र का वह प्रकरण प्रयोग का विषय बनाया गया है, जिसमें वनौषधियों के समुचित सम्मिश्रण से विनिर्मित हवन सामग्री एवं वन्य काष्ठ की समिधाओं के वाष्पीभूत प्रयोग को सम्पन्न किया जाता है। इसमें अग्नि स्तर की ऊर्जा का प्रयोग होने से, उसके लिए अग्निहोत्र का पुरातन नाम, नये रूप में ठीक ही प्रयुक्त किया गया है।

सर्वविदित है कि पदार्थ अविनाशी है। उसका स्वरूप परिस्थितिवश ठोस, द्रव एवं गैस रूप में परिवर्तित होता रहता है। वनस्पतियाँ भी पदार्थ हैं। उनका उपयोग स्वास्थ्य-संवर्धन और रोग-निवारण के उभय प्रयोजनों के लिये किस प्रकार किया जाय, यही आयुर्वेद की चिरपुरातन और बहुप्रचलित विधा है। वैदिक काल में

ऋषिगण इसी माध्यम से व्यक्तियों के समूह की, जीव जगत की, पर्यावरण की चिकित्सा करते थे। सामान्य रूप से आयुर्वेद में ठोस एवं द्रव पक्षों का ही आमतौर से प्रयोग होता रहता है। चूर्ण, आसव, क्वाथ, अरिष्ट, अवलेह, मोदक आदि के रूप में ही प्राय: उसका प्रयोग होते देखा जाता है। तीसरा एवं अति महत्त्वपूर्ण वाष्पीकरण का पक्ष, अधिक सूक्ष्म होने के कारण अधिक प्रभावोत्पादक है। एयरोसॉल अथवा आयन रूप में-सूक्ष्मीकृत स्थिति में होने के कारण वह तुरन्त प्रभाव दिखाता है। इतने पर भी उस विधा को उपेक्षा के खड्डु में धकेल दिया गया है। उसका विकृत स्वरूप अन्न व घृत होम होने के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जबकि वह आज की दुष्काल भरी परिस्थितियों में न तो सम्भव है, न शास्त्रसम्मत और न व्यावहारिक। प्रतिगामियों को, नास्तिकों को यहीं पर प्रहार करने का अवसर मिल जाता है; क्योंकि वे स्वयं तो यज्ञ व अग्निहोत्र का अन्तर समझ नहीं पाते। अग्निहोत्र करने वाले इस प्रक्रिया को सही रूप में सम्पन्न न कर, दोनों का गुड़गोबर कर खिल्ली उड़ाते हैं, जबकि आयुर्वेद के लगभग सभी ग्रंथों में औषधियों का धूम्र रूप में स्थानीय एवं अन्तरंग प्रयोग होने का उल्लेख है; परन्तु इन दिनों इस प्रकार के प्रयोग होते कदाचित ही कहीं देखे जाते हैं।

शान्तिकुञ्ज के अनुसंधान में इस विधा को अपने हाथ में लिया गया है और इस प्रक्रिया को पूर्णत: विज्ञानसम्मत प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है। इस आधार पर वनौषधियों द्वारा मानव समुदाय की जीवनीशक्ति, प्रतिरोधी सामर्थ्य बढ़ाकर, शारीरिक रोगों के निवारण के रूप में इसका उपयुक्त प्रभाव देखा जाता है। इसके अतिरिक्त मानसिक सामर्थ्य बढ़ाने, मनोविकारों के निवारण

रूपी लाभों की एक दूसरी श्रृंखला भी साथ ही जुड़ती है, जिसके सम्बन्ध में अन्य पद्धतियों में प्राय: कम प्रयोग हुए हैं। उदाहरण रूप में ईथर, नाइट्रस ऑक्साइड, क्लोरोफार्म आदि को सुँघाकर ऑपरेशनों के समय बेहोश करने की विधा काम में लायी जाती है। जुकाम की स्थिति में विक्स तथा बेंजोइक अम्ल के वाष्पीभूत धूम नासिका मार्ग से ग्रहण किये जाते हैं एवं दमे का तेज दौरा पड़ने पर आइसोप्रिनेलिन, कार्टीसोन, टरब्यूटेमॉल इत्यादि वाष्प रूप में दिये जाते हैं। यही नहीं, दिल का दौरा पड़ने पर कैप्सूल रूमाल में फोड़कर वाष्पीभूत औषधि अमाइल नाइट्राइट को तुरन्त सूँघने के लिये कहा जाता है। यह रोगों के विभिन्न सूक्ष्म अंगों तक औषधि पहुँचाने का सबसे सुगम, व्यापक एवं सशक्त मार्ग है। इसी प्रकार जोड़ों के दर्द में औषधियों की भाप पीड़ित स्थान पर केन्द्रीभूत कर उससे दर्द-निवारण का परामर्श भी दिया जाता है। फिर भी ये कुछ आधे-अधूरे प्रयोग ही हैं। वनौषधियाँ वाष्पीभूत होकर किस प्रकार सरलतापूर्वक अंग-प्रत्यंगों तक पहुँचती हैं और किस प्रकार अपने अभिनव द्रुतगामी प्रभाव दिखाती हैं, इसका एक अलग ही अनोखा विधान है।

अग्निहोत्र में तैलीय तत्त्व प्रधान समिधाएँ और हवन सामग्री दोनों का ही प्रयोग होता है। बहुत न्यून मात्रा में शक्कर एवं घी (शुद्ध न उपलब्ध होने की स्थिति में गाय का दूध) को भी सम्मिलित किया जाता है। समिधा के रूप में मान्य काष्ठ (जो विशिष्ट गुण सम्पन्न औषधीय तत्त्वयुक्त होते हैं) ही प्रयुक्त होते हैं। ऐसे काष्ठों में शारीरिक रोगों के निवारण की शक्ति पायी जाती है। आमतौर से आम, पीपल, वट, शमी, चन्दन, देवदारु, तगर, बिल्व जैसे वृक्षों की लकड़ियाँ ही इस निमित्त अग्नि प्रज्ज्वलन के लिए काम में लायी

जाती हैं । किस प्रजाति में क्या-क्या संघटक तत्व हैं, वह कैसे जाना जाय एवं किस आधार पर किसे प्रामाणिक माना जाय, यह चुनाव शान्तिकुञ्ज के वैज्ञानिक कालम क्रोमेटोग्राफी, थिनलेयर क्रोमेटोग्राफी तथा गैस लिक्विड क्रोमेटोग्राफी यंत्रों के माध्यम से करते हैं । गैस लिक्विड क्रोमेटोग्राफी पूरी तरह से कम्युटराइज्ड एक जटिल संयंत्र है, जो औषधियों के सान्द्र क्वाथ एवम् वाष्पीभूत गैसों का परिपूर्ण विश्लेषण कर, उनको एक ग्राफ पर अंकित करता जाता है। इससे यह जानकारी मिल जाती है कि ज्वलन के पूर्व औषधियुक्त पौधे में क्या-क्या कार्यकारी तत्त्व विद्यमान थे एवं उस प्रक्रिया से गुजरने के उपरान्त उनमें क्या परिवर्तन हुआ ? धूम्र में कहीं कार्बन के हानिकारक कण तो विद्यमान नहीं हैं, यह प्रामाणिक जानकारी भी जी.एल.सी यन्त्र दे देता है । जिस कुण्ड में हवन किया जाता है उसका ज्यामितीय आकार बहुत महत्त्व रखता है। यह उलटे पिरामिड के आकार का होता है। नीचे सँकरा, ऊपर चौड़ा। जितना आयतन होता है, उतनी ही समिधायें डाली जाती हैं व उतनी ही हवन सामग्री, ताकि संतुलित ऊर्जा पैदा होती रहे, अग्नि प्रदीप्त रहे, धुआँ उत्पन्न न हो। निर्धारित एक आहुति में जितना हविष्य (जौकुट स्थिति में) जाता है, वह लगभग तीन माशे के बराबर होता है। ताम्रपात्र या हवन कुण्ड इतनी दूर रहता है कि याजक तो अधिक गर्मी अनुभव न करें एवं जो भी धूम्र बने, वे श्वास मार्ग से अन्दर जाते रहे। आधे घण्टे का औसत प्रयोग पर्याप्त माना जाता है। कितनी उष्मा यज्ञ प्रक्रिया के विभिन्न खण्डों में उत्पन्न हुई, इसका मापन थर्मोकपल यन्त्र करता है। प्रकाश की तीव्रता "लक्समीटर" मापता है तथा अग्नि लौ के स्पेक्ट्रम को स्पेक्ट्रोस्कोप द्वारा देखा जाता है।

वनौषधि यजन प्रक्रिया, धूम्रों को व्यापक बनाकर सुगन्ध फैलाकर समूह चिकित्सा की विधा है, जो पूर्णत: विज्ञानसम्मत है। गंध-प्रभाव के माध्यम से मस्तिष्क के प्रसुप्त केन्द्रों का उद्दीपन, अंदर के हारमोन रस-द्रव्यों का रक्त में आ मिलना तथा श्वाँस द्वारा प्रमुख कार्यकारी औषधि घटकों का उन ऊतकों तक पहुँच पाना, जो कि जीवनीशक्ति निर्धारण अथवा व्याधि निवारण हेतु उत्तरदायी हैं, ये कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं, जो वनौषधि यजन अर्थात् अग्निहोत्र से प्राप्त होती हैं। अग्निहोत्र प्रक्रिया विज्ञान की कसौटी पर कितनी सही है, ब्रह्मवर्चस के वैज्ञानिक भौतिकीय एवं रासायनिक आधार पर यह परीक्षण कर रहे हैं। अपने उद्देश्य में उन्हें महत्त्वपूर्ण सफलताएँ मिल भी रही हैं।

अग्निहोत्र से शरीर ही नहीं, मन का भी उपचार

वनौषधियों के पंचांग को कूटकर खाने में उसे बड़ी मात्रा में निगलना कठिन पड़ता है। यही स्थिति ताजी स्थिति में कल्क बनाकर पीने में उत्पन्न होती है। इससे तो गोली या वटिका बना कर सेवन करने में मनुष्य को कम कठिनाई अनुभव होती है। सूखी स्थिति से भी क्वाथ, अर्क, आसव, अरिष्ट अधिक सुविधाजनक रहते हैं और प्रभावी भी होते हैं। ठोस और द्रव की उपरोक्त दोनों विधाओं से बढ़कर वाष्पीभूत औषधि की प्रभाव क्षमता अधिक व्यापक एवं गहरी होती है। नशा करने वाले मुँह से भी गोली या मादक द्रव्य लेते हैं, अपनी नसों में भी इन्जेक्शन लगाते हैं, पर इससे भी अधिक तीव्र व शीघ्र नशा उन्हें नाक से सूँघी हुई औषधि या धूम्रपान द्वारा आता है। यह इसलिए कि वाष्पीभूत मादक द्रव्य नासिका एवं फेफड़ों के माध्यम से अन्दर पहुँचकर प्रभावी हो जाते

हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि ठोस,द्रव और गैस के तीन रूपों में पाया जाने वाला पदार्थ एक के बाद दूसरे की अपेक्षा तीसरे स्तर पर अधिक क्षमतावान होता चला जाता है।

अग्निहोत्र विद्या के साथ भी ऐसे ही अनेक कारण जुड़े हुए हैं, जिनके कारण उसे प्राचीनकाल में उच्चकोटि की प्रतिष्ठा मिली थी। आज भी उस मान्यता को पुनः प्राण मिलने की स्थिति है। वनौषधियाँ वाष्पीकृत स्थिति में फेफड़े में होती हुए मस्तिष्क आदि अवयवों में होकर शरीर के जीवकोषों तक पहुँचती व अपनी इस सीधी पहुँच के कारण ही प्रभाव दिखा पाने में सक्षम हो पाती हैं। फेफड़ों में विद्यमान वायुकोष्ठकों का औसत क्षेत्रफल लगभग १०० वर्ग मीटर होता है। प्रकोष्ठों की झिल्ली दस माइक्रोमीटर पतली होती है। एक बार में साधारण श्वाँस द्वारा वायु का ५०० मिलीलीटर एवं गहरी श्वाँस द्वारा ९०० से ९५० मिलीलीटर आयतन अन्दर प्रवेशकर इसके बदले कार्बन डायआक्साइड को बाहर भेज देता है। ऐसी श्वाँस-प्रश्वाँस प्रक्रिया एक मिनट में १५ से १८ बार होती है। इस प्रकार एक मिनट में जब तक हृदय लगभग ७० से ८० बार धड़क चुका होता है, श्वाँस मार्ग ७५५० मिलीलीटर वायु का आदान-प्रदान हो चुका होता है। इन आँकड़ों से एक अनुमान इस सशक्त माध्यम का लगाया जा सकता है, जिससे वनौषधि यजन प्रक्रिया द्वारा वाष्पीभूत धूम्र शरीर में प्रविष्ट कराए जाते हैं। यजन-प्रक्रिया के अनेकानेक आध्यात्मिक लाभों के अतिरिक्त, उसका प्रभाव शरीर और मन के सभी महत्त्वपूर्ण अवयवों तक पहुँचने की मान्यता का वस्तुतः तर्कपूर्ण आधार है।

मस्तिष्कीय उपचार अपने आप में एक ऐसी विधा है जिसकी आवश्यकता शरीरोपचार से भी अधिक समझी जानी चाहिए। इन दिनों मनोविकारों-मानसिक रोगों की भरमार शारीरिक बीमारियों से कहीं अधिक है; किन्तु इसे विडम्बना ही कहना चाहिए कि समस्त चिकित्सा पद्धतियाँ मात्र शारीरिक व्यथाओं के इर्दगिर्द ही अपने प्रयासों को सीमित रख रहीं हैं। संसार में अनेकानेक चिकित्सा पद्धतियों का प्रचलन है; किन्तु उनमें से एक भी नहीं है, जो मनोविकारों पर ध्यान देती और उनके समाधान खोजती हो। गेस्टाल्ट साइकोथेरेपी से लेकर बिहेवियरल साइकोथेरेपी अनेकानेक पद्धतियाँ प्रचलन में हैं पर मनुष्य की स्थूल परत तक ही अपनी पैठ बिठा पाती हैं। भारतीय मनोविज्ञान में जिसे अन्तःकरण चतुष्टय कह कर संबोधित किया गया है, उसके उपचार का विधान मात्र अग्निहोत्र उपचार पद्धति में देखने को मिलता है। आत्महत्या की प्रवृत्ति से लेकर विभिन्न भ्रान्तियों-सनक वाले रोगी जेल स्तर पर पागलखानों में कैद कर दिये जाते हैं। बहुसंख्यों को बिजली के झटके भी लगा दिये जाते हैं; किन्तु इस उपचार से कितने रोगी अच्छे हो पाते हैं, यह नहीं कहा जा सकता। शामक एवं मस्तिष्क को संज्ञाशून्य करने वाली औषधियाँ ही प्रचलन में दिखाई पड़ती हैं। हो सकता है, इससे उन्माद में कुछ घट-बढ़ होती हो पर जनसमुदाय में से अधिकांश को जिन हल्के मनोरोगों का शिकार बनकर रहना पड़ रहा है, उनके निराकरण का कोई विकल्प नज़र नहीं आता।

इन दिनों अन्यान्य प्रदूषणों के साथ एक प्रदूषण और आ जुड़ा है- वह है चिन्तन का, आस्थाओं का प्रदूषण। आशंका, अविश्वास, अकारण चिन्ता, भय, उत्तेजना, असंतुलन आदि से कितने ही लोग

घिरे देखे जाते हैं। सोचने की सही पद्धति हाथ न लगने के कारण कितने ही लोग बौखलाए फिरते रहते हैं। कइयों को निराशा, उदासी घेरे रहती है। मनोबल, संकल्पशक्ति का नितान्त अभाव दिखाई पड़ता है। कई कल्पनाएँ गढ़ते और उनमें उलझकर इस प्रकार रहते हैं, मानों उनपर कोई विपत्ति का पहाड़ टूटने वाला हो। कुकल्पनाएँ चित्र-विचित्र मोड़ लेकर बहकाती रहती हैं। इन विकारों से व्यक्तित्व टूट जाते हैं। कइयों के परस्पर विरोधी कई व्यक्तित्व उभर आते हैं। सोचते कुछ, कहते कुछ और करते कुछ हैं। अवास्तविक को वास्तविक मानते हैं। इनकी विक्षिप्तता स्वयं अपने को बेतुके असमंजसों में डाले और हैरानियों में उलझाये रहती है। ऐसी सनकें न्यूनाधिक मात्रा में असंख्यों पर छायी रहती हैं। प्रत्यक्षत: दिखाई भले न पड़ती हों थोड़े से सम्पर्क से ही ये उभरकर सामने आ जाती हैं। जिन्हें विवेकशील और संतुलित व्यक्तित्व वाला कहा जा सके, ऐसे कोई विरले ही व्यक्तित्व दिखाई देते हैं।

ब्रह्मवर्चस के वैज्ञानिक गहन मनोवैज्ञानिक जाँच पड़ताल के बाद व्यक्तित्व संबंधी इन विकृतियों का निदान करते हैं। आत्मप्रत्यय, व्यक्तित्व विश्लेषण एवं विभिन्न मनो-आध्यात्मिक प्रश्नावलियों के माध्यम से उन प्रसुप्त मनोविकारों की जाँच पड़ताल की जाती है, जो बहिरंग में नजर आ रहे लक्षणों-शारीरिक रोगों के मूल में निहित होते हैं। प्रायश्चित परंपरा के माध्यम से साधकों, परीक्षार्थियों से उनके विगत के चिन्तन, क्रिया-कलाप, वर्तमान मन:स्थिति तथा भविष्य के प्रति दृष्टिकोण को जानने का प्रयास किया जाता है। चिकित्सा तंत्र के प्रति आस्था एवं वातावरण में विद्यमान विशिष्टता उनकी गहरी से गहरी ग्रंथि खोलने में सहायक होती है। 'पॉलिग्राफ' नामक यंत्र इस

प्रक्रिया में सहायता करता है। इसमें त्वचा का विद्युतीय प्रतिरोध, माँसपेशियों की विद्युत तथा मस्तिष्क की आल्फा वेव्ज़ को भी मापे जाने एवं ''बायोफीडबैक'' यंत्र द्वारा परीक्षार्थियों को क्रमशः ग्रन्थिमुक्त होने का शिक्षण दिये जाने की भी व्यवस्था है। साधारण स्थिति में भी यही उपकरण व्यक्ति की ध्यान, एकाग्रता में वृद्धि तथा मनः शक्ति संवर्धन द्वारा विद्युतीय त्वचा प्रतिरोध में अन्तर के रूप में परीक्षण के काम आते हैं।

इन दिनों उद्धत स्वभाव की तरह अपराधी कृत्यों की, आत्महत्याओं, बलात्कारों की भी बाढ़ आ रही है। अभक्ष्य भक्षण, नशेबाजी का दौर बेहिसाब चल रहा है। इन सबका भी जनमानस पर कम कुप्रभाव नहीं पड़ रहा है। चिन्तन और चरित्र की गिरावट का भी मनोविकारों की अभिवृद्धि में योग होना ही चाहिए। यही कारण है कि शारीरिक और मानसिक रोगों की व्यापकता और गहराई दोनों बढ़ती जा रही है। रोगों में रक्तचाप वृद्धि, पाचन-तंत्र की विकृतियाँ, रक्तविकार, दमा, जननेन्द्रियों की बीमारियाँ तथा मानसिक तनाव आदि का बाहुल्य है। नयी दवाएँ नित्य निकलती हैं; किन्तु कुछ ही दिनों में गुणहीन होने लगती हैं।

ऐसी दशा में वनौषधि की सूक्ष्म शक्ति का उपयोग आवश्यक हो गया है। वायुभूत बना लेने पर साँस के द्वारा मस्तिष्क के अनेक क्षमता क्षेत्रों और शरीर के अन्तरंग अवयवों तक आसानी से पहुँचायी जा सकती हैं। उनकी प्रभाव क्षमता अधिक एवं स्थायी है। इन औषधियों के कार्यकारी घटकों, शरीर के अन्तरंग अवयवों तक पहुँचाने की सामर्थ्य एवं उनके प्रभाव का परीक्षण भी किया जा सकना है।

अंग अवयवों में, जिन रसायनों की-जिन ऊर्जा तत्वों की कमी पड़ती है, वह उपयुक्त सामग्री सामने प्रस्तुत होने पर, अग्निहोत्र वाष्प में से खींच ली जाती है और आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है। जो कुछ भी कमी रहती है, वह यज्ञावशिष्ट, भष्म एवं चरुसेवन के माध्यम से पूरी हो जाती है। यही अग्निहोत्र प्रक्रिया अपनी ऊष्मा से, वायुभूत तैलीय औषधि तत्त्वों का फेफड़ों द्वारा अवशोषण बढ़ा देती है। साथ-साथ अल्प मात्रा में त्वचा से होने वाली श्वसन प्रक्रिया की गति बढ़ा देती है। इसे वायटेलोग्राफ (स्पायरोमेट्री) द्वारा लंगफंक्शन तथा "प्लेथिज्मोग्राफी" द्वारा रक्त का आयतन ज्ञात कर मापा जाता है। यह कार्य ब्रह्मवर्चस की प्रयोगशाला में चल रहा है। अग्निहोत्र उपचार की यही विशेषता है कि शारीरिक एवम् मानसिक रोगों में जिन तत्त्वों की कमी पड़ जाती है, उन्हें धूम्र में से आसानी से खींच लिया जाता है। साथ ही प्रश्वॉस द्वारा भीतर घुसी अवांछनीयता को बाहर धकेल कर सफाई का आवश्यक प्रयोजन पूरा कर लिया जाता है। बहुमुखी संतुलन बिठाने का यह माध्यम हर प्रकार की विकृतियों का निराकरण करने में असंदिग्ध रूप में सफल होता है।

अग्निहोत्र उपचार की एक प्रकार की समूह चिकित्सा है, जिससे एक ही प्रकृति की विकृति वाले विभिन्न रोगी लाभान्वित हो सकते हैं। यह सुनिश्चित रूप से त्वरित लाभ पहुँचाने वाली सबसे सुगम एवं सस्ती उपचार पद्धति है। जब वाष्पीभूत होने वाले औषध तत्त्वों को साँस के साथ घोल दिया जाता है, तो वह रक्तवाही संस्थान के रास्ते ही नहीं, कण-कण तक पहुँचने वाले वायु संचार के रूप में भी वहाँ जा पहुँचता है, जहाँ उसकी आवश्यकता है।

यह बहुविदित तथ्य है कि हाइपॉक्सिया (कॉमा) के रोगी को अथवा वेण्टीलेशन में व्यतिक्रम आने पर, साँस लेने में कठिनाई उत्पन्न होने पर नलिका द्वारा नाक से ऑक्सीजन पहुँचायी जाती है; किन्तु इसमें ऑक्सीजन को शुद्ध रूप में नहीं दिया जाता। इसमें कार्बन डायऑक्साइड की लगभग पाँच प्रतिशत मात्रा का भी एक संतुलित अंश रहता है, ताकि मस्तिष्क के केन्द्रों को उत्तेजित कर श्वसन प्रक्रिया नियमित बनायी जा सके। अग्निहोत्र में उत्पन्न वायु ऊर्जा में भी यही अनुपात गैसों के सम्मिश्रण का रहता है। विशिष्ट समिधाओं के प्रयुक्त होने से उत्पन्न ऊर्जा इस सम्मिश्रण को उपयुक्त स्तर का बना देती है। किन समिधाओं व किन वनौषधियों की कितनी मात्रा ऊर्जा उत्पन्न करने हेतु प्रयुक्त की जाय, यह इस विधा के विशेषज्ञ जानते हैं एवं तदनुरूप परिवर्तन करते रहते हैं।

शारीरिक रोगों एवं मनोविकारों से उत्पन्न विपन्नता से छुटकारा पाने के लिए अग्निहोत्र से बढ़कर अन्य कोई उपयुक्त उपचार पद्धति है ही नहीं, यह अब सुनिश्चित होता जा रहा है।

यह युगसंधि की वेला है। बीसवीं सदी में यज्ञाग्नि ही अवांछनीयताओं का समापन एवं इक्कीसवीं सदी के साथ उज्ज्वल भविष्य के आगमन एवं सतयुग की वापसी का वातावरण विनिर्मित करने जा रही है। दोनों शताब्दियों की मध्यवर्ती अवधि वाली युगसंधि इन्हीं दिनों चल रही है।

शब्दयोग एवं संगीत की प्रभावोत्पादक सामर्थ्य

अग्निहोत्र समिधाओं के सहारे अग्नि प्रज्ज्वलित कर वनौषधियों को जला देने की क्रिया मात्र नहीं है; वरन् इसके साथ मन्त्रोच्चार की अनिवार्य विधा भी जुड़ी हुई है। यदि ऐसा न होता तो लोग किसी अँगीठी में रख कर जड़ी-बूटियों को जला भर दिया करते और उसके धुएँ से वे लाभ उठा लेते, जो अग्निहोत्र के साथ अतिमहत्वपूर्ण स्तर के बनकर जुड़े हुए हैं।

यज्ञ-कृत्य में वेद मंत्रों का समवेत स्वरों में उच्चारण होता है। वेद मन्त्रों में मात्र शिक्षा ही नहीं है, उनमें स्वर संगीत का भी समावेश है। सामवेद की शाखा-प्रशाखाएँ इसी निमित्त रची गयीं थीं कि उन्हीं मन्त्रों को विभिन्न प्रयोजनों के लिए विभिन्न ध्वनियों में गाया और उनसे तदनुरूप परिणाम उपलब्ध किया जाय। यज्ञों में उद्गाता का महत्त्वपूर्ण पद इसलिए नियत था कि मन्त्रों को आवश्यक्तानुरूप ध्वनियों में विधिपूर्वक गाया जा सके।

यज्ञाग्नि एक प्रकार से विद्युत उत्पादक केन्द्र का काम करती है। उसके साथ निर्धारित ध्वनि का समावेश हो जाने पर उत्पादित शब्द शक्ति की क्षमता एवं उपयोगिता अनेक गुनी हो जाती है। रेडियो प्रसारणों में भी यही विधा काम में लायी जाती है। सामान्य रीति से उच्चरित स्वर, विद्युत तरंगों के साथ जुड़ कर इस योग्य बन जाते हैं कि एक बहुत व्यापक क्षेत्र तक जा सकें। अग्निहोत्र प्रक्रिया में उच्चरित वेद मन्त्रों का प्रवाह भी इसी स्तर का शक्तिशाली बन जाता है। यह मनुष्य ही नहीं, आस-पास के वातावरण को भी प्रभावित करता है। मनुष्य के स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण तीनों शरीरों का उपयोगी परिष्कार होता है। इसके अतिमहत्त्वपूर्ण सत्परिणाम देखने में आते हैं।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान में यज्ञ प्रक्रिया का छोटा एवम् आरम्भिक रूप अग्निहोत्र ही हाथ में लिया गया है। उसे सार्वभौम एवम् सार्वजनिक भी बनाया गया है। इसलिए उसके साथ उन सुगम संगीतों का भी समावेश किया गया है, जो सभी के लिए विशेषतया भारतीय परिस्थितियों के, उसके देशवासियों की मनोदशा के अनुकूल पड़ते हैं। यह संगीत शक्ति, सामर्थ्य से भरी-पूरी है तथा इसकी प्रतिक्रिया सरलतापूर्वक जाँची जा सकती है। वेदमंत्रों के अतिरिक्त संगीत विज्ञान को शोध का विषय बनाया गया है और देखा गया है कि संगीत की-शब्द शक्ति की कितनी विधाएँ मनुष्य के शारीरिक-मानसिक रोगों के निवारण में काम आ सकती हैं।

संगीत का सीधा संबंध भावनाओं को तरंगित करने से है। इसलिए वह स्थूल और सूक्ष्म शरीर के साथ-साथ कारण शरीर के उत्कर्ष- उन्नयन का आधार भी बन जाता है। तनाव मिटाने, मनःशक्ति संवर्धन में उसकी उपयोगिता देखी गयी है। संगीत का प्रभाव जलचर, थलचर, नभचर वर्ग के प्राणियों पर भी पड़ता देखा गया है। वायुमंडल के परिशोधन संबंधी प्रभाव भी उत्पन्न होते हुए देखे गये हैं। गेय मन्त्रों के उच्चारण का जो महत्त्व है, उसमें उसकी स्वर लहरी का प्रभाव विशेष रूप से देखा और सरलतापूर्वक जाना जा सकता है। वृक्ष-वनस्पतियों तक पर उसका प्रभाव होता है। संगीत के प्रभाव से अधिक फसल उत्पन्न होने, वृक्षों पर अधिक फल लगने, प्राणिवर्ग में उपयोगी समर्थता बढ़ने की पृष्ठभूमि बनती है।

यों संगीत का प्रभाव एक स्वतंत्र विषय है और उसकी सर्वतोमुखी परिणति के सत्परिणाम शोध-उपकरणों तथा अनुभवों के आधार पर देखे-पाये जा सकते हैं। अनेक देशों में इस दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रयोग चल रहे हैं और उनके उपयोगी सत्परिणामों को देखते हुए संगीत को मानव जीवन की एक उपयोगी विधा के रूप में स्वीकारा जाने लगा है। शान्तिकुञ्ज के

शोध-प्रयासों में यह जाँचा-परखा जा रहा है कि किस संगीत से मानव जीवन की किस कठिनाई को घटाया और किस आवश्यकता पूर्ति का सुयोग किस सीमा तक बढ़ाया जा सकता है? संगीत की तरंगों को ऑसीलोस्कोप के माध्यम से देखा-परखा जाता है एवं विभिन्न स्वर लहरियों की पिच, एम्प्लीट्यूड तथा वेवलेन्थ को मापा जाता है। शोर एवं संगीत की ध्वनि तरंगों के स्वरूप के अन्तर के माध्यम से यह दर्शाया जाता है कि शब्द-शक्ति से विकृत रूप के भिन्न-भिन्न प्रभाव होते हैं। इसके लिए बड़ी क्षमता वाले ड्युअलबीम स्टोरेज़ ऑसीलोस्कोप से कार्य आरम्भ किया गया है। संगीत के माध्यम से तनाव मुक्त कैसे हुआ जा सकता है, इसे पॉलीग्राफ यंत्र से दर्शाया तथा बायोफीडबैक द्वारा साधकों को प्रशिक्षित करने की विधा का भी यहाँ समावेश किया गया है।

अग्निहोत्र से भी संगीत चिकित्सा की संगति इस प्रकार बैठती है कि जब गायत्री मंत्र को स्टीरियो डेक द्वारा सुनाया जाता है, तब गायन-वादन के माहौल को प्रभावित करने के लिए अग्निहोत्र के प्रयोग भी चल रहे होते हैं। इस प्रकार ध्वनि के साथ ताप भी जुड़ जाता है और उच्चारण में ऐसा सूक्ष्म अन्तर विकसित होता है, जिसकी प्रभावोत्पादक शक्ति कहीं अधिक होती है।

शब्द, ताप एवं प्रकाश यही तीन तरंगें प्रकृति का सूक्ष्मरूप हैं। अग्निहोत्र में इन तीनों का समुचित समन्वय हो जाता है। इस संतुलित ऊर्जा का प्रभाव मानवी काया, मन, जीव-जगत, पर्यावरण एवं वृक्ष-वनस्पतियों पर बढ़-चढ़कर सत्परिणाम उत्पन्न करते देखा जा सकता है। जहाँ संभव होता है, वहाँ गायन-वादन मंडली अग्निहोत्र के सुरभित वातावरण में अमुक प्रयोजन के लिए अमुक विधान अपनाये जाने की नीति अपनाती

है। जिन्हें उस प्रभाव की विशेष आवश्यकता है, वे वहाँ शान्त-चित्त से बैठते हैं। उन्हें केन्द्र बनाया जा सकता है। आज के यान्त्रिक युग में वह प्रयोजन ऑडियो कैसेट द्वारा भी पूरा किया जा सकता है।

शान्तिकुञ्ज द्वारा संगीत प्रवाहों के कुछ ऐसे टेप आविष्कृत किये जा रहे हैं जो विभिन्न प्रयोजनों के लिये विभिन्न प्रकार की भूमिकाएँ निबाहते हैं। वनस्पतियों को अधिक बढ़ने और फलने-फूलने में योगदान देने वाले संगीत टेप भी होते हैं, तो थलचरों-नभचरों को प्रभावित करने वाले अन्य प्रकार के। मनुष्यों के लिये तीन प्रयोजनों को पूरा करने वाले अलग-अलग प्रवाहों वाले टेप बनाये जा रहे हैं। (१) शारीरिक स्वस्थता (२) मानसिक प्रखरता (३) भाव-संवेदना क्षेत्र की उत्कृष्टता।

संगीत चिकित्सा को एक स्वतंत्र विषय माना जा सकता है। उसमें अग्निहोत्र का पुट किसी प्रकार लग जाने से प्रभाव क्षमता का और भी अधिक विस्तार होते देखा गया है। भेद-उपभेदों का ध्यान रखते हुए ऐसे वाद्ययन्त्रों के समुच्चय तैयार किये जा रहे हैं जो विभिन्न प्रकार की व्याधियों के निराकरण में अपना प्रभाव दिखा सकें। कोई व्यक्ति किस दिशा विशेष में अपने व्यक्तित्व को अग्रसर करना, शक्ति-संवर्धन करना चाहता है? यह एक स्वतंत्र प्रयोजन है। संगीत टेपों का अगले दिनों इस प्रकार का प्रयोग-परीक्षण होने जा रहा है, जिसके आधार पर अभीष्ट प्रगति का द्वार खुल सके।

मान्यता है कि सृष्टि के आदि में शब्द उत्पन्न हुआ। उसका ध्वनि प्रवाह ॐकार जैसा था। इसके बाद अन्यान्य तत्त्व उत्पन्न होते गये और सृष्टि की परोक्ष सत्ता प्रत्यक्ष कलेवर धारण करती चली गयी। ओंकार ध्वनि-शास्त्र का बीज है। उस अकेले को ही इतने अनेक प्रवाहों में गाया जा सकता है कि सातों स्वरों का परिचय उस अकेले से ही प्रादुर्भूत हो

सके। संगीत-चिकित्सा के अनुसंधान में अगले दिनों ऐसे प्रयोग भी चल सकेंगे कि समस्त श्रुति-ऋचाओं का बीज मन्त्र ॐकार ही विभिन्न ध्वनि लहरियों में प्रयुक्त करके संगीत-चिकित्सा का ढाँचा खड़ा किया जा सके।

संगीत की ध्वनि लहरियाँ शरीर संस्थान, मनः संस्थान और भाव संस्थान के तीनों ही क्षेत्रों को तरंगित करती हैं। ध्वनि प्रवाह शरीर के प्रत्येक अंग-अवयव पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं। इन तरंग लहरों में ज्वार-भाटे जैसे गुण पाये जाते हैं। उनमें शमनकारी और उत्तेजक दोनों ही क्षमताएँ प्रचुर परिमाण में विद्यमान पायी जाती हैं। मनुष्य ने विद्युत, लेसर, बारूद, अग्नि आदि का दिव्य वरदानों के रूप में उपयोग किया है। संगीत ऊर्जा का भी सृजनात्मक उपयोग कर उसने मानव मात्र को लाभान्वित किया है। अब इसकी व्यापक क्षमता का प्रयोग समष्टिगत वातावरण परिशोधन के रूप में होना चाहिए। वातावरण में सौम्य सात्विकता का समावेश करने के लिये संगीत का सामूहिक सहगान-संकीर्तन के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

शान्तिकुञ्ज की संगीत शोध प्रक्रिया में विभिन्न भाव-सम्वेदनाओं के साथ गाये जाने वाले वाद्यों का क्या प्रभाव चेतना जगत् एवम् जड़ जगत् पर होता है, इसका प्रयोग परीक्षण इन दिनों सफलतापूर्वक किया जा रहा है। इसके निष्कर्ष सामने आने पर यह सिद्ध होने की सम्भावना है कि विधि विशेष से किये गये सामूहिक दिव्य संकीर्तन, मन्त्रोच्चार अपने माहौल में उत्कृष्टता उत्पन्न करते ही हैं, विश्वव्यापी वातावरण पर भी उनका उपयोगी प्रभाव पड़ता है।

अध्यात्म का प्रवेश द्वार-ध्यान योग

अग्निहोत्र प्रक्रिया का उच्चस्तरीय रूप यज्ञ है, जिसे आध्यात्मिक उत्कर्ष का मान्य उपाय स्वीकार गया है। अन्तःकरण से लेकर अन्तरात्मा तक गुह्य परिष्कारों में यज्ञ की अपनी उपयोगिता और महत्ता है पर वह भावना प्रधान, चरित्र प्रधान और साधना प्रधान होने से अधिक सूक्ष्म है। इतना सूक्ष्म कि उसे पदार्थ विज्ञान की वर्तमान पकड़ से ऊपर ही समझा जा सकता है। प्रयोगशालाओं के यन्त्र-उपकरण और वैज्ञानिकों की प्रत्यक्षवादी समझ, उसका विवेचन-विश्लेषण आदि करने में समर्थ नहीं हो सकती।

यज्ञ अनेक हैं। वे सभी अध्यात्म के विशिष्ट और विभिन्न अंग हैं। उन सबकी अपनी-अपनी विशिष्ट प्रक्रिया एवं प्रतिक्रिया है। ज्ञान-यज्ञ, ब्रह्म-यज्ञ, भूदान यज्ञ आदि की अपनी-अपनी गरिमा है। इसमें से जिनकी वैज्ञानिक प्रयोगशाला में जाँच-परख की जा सकती है उनमें ध्यान-योग बहुचर्चित और सर्वविदित है। उपासना के अनेकानेक विधि-विधान हैं। योगाभ्यास के भी कतिपय विधि-विधान हैं। अनेक संप्रदायों और परम्पराओं में उन सबका उल्लेख, प्रतिपादन एवं प्रचलन है पर उन सभी में किसी न किसी रूप में ध्यान-योग का समावेश है। बिना ध्यान के अध्यात्म प्रयोजन के लिए किए गये क्रिया-कृत्य मात्र कर्मकाण्ड बनकर रह जाते हैं। वस्तुओं की हेरा-फेरी अथवा अंग-संचालन के रूप में की गई क्रिया, मात्र आरम्भिक प्रयोक्ताओं के लिए बाल-कक्षाओं में अपनायी जाने वाली प्रक्रिया मात्र है। उनसे स्वभाव ढलने, स्वास्थ्य संवर्धन के अभ्यास पड़ने के आरम्भिक प्रयोजन ही किसी रूप में पूरे होते

हैं। साधना कोई भी क्यों न हो, उसमें यदि ध्यान की उपेक्षा की जाय, तो समझना चाहिए कि कृत्य पूरी तरह अधूरा रह गया और वह परिणाम न मिल सका जो अध्यात्म क्षेत्र में प्रवेश करने एवं उत्कर्ष की इच्छा रखने वालों को मिलना चाहिए था।

ध्यान-योग को भौतिकी की कसौटी पर भी कसा जा सकता है। ध्यान की भौतिक-स्थूल परिणतियाँ भी होती हैं। समाधि में निश्चेष्ट हो जाना, अंग का रक्त-संचार बंद कर देना, माँसपेशियों को अतिशय कड़ा कर देना जैसे कौतुक ध्यान-योग के अभ्यासी प्राय: दिखाते रहते हैं। सरकस के पात्रों का कौतूहल प्रदर्शन उनकी एकाग्रता पर अवलम्बित है। वैज्ञानिक , साहित्यकार, कलाकार अपनी विशेषताएँ ध्यान को केन्द्रीभूत करके ही प्रदर्शित कर पाते है। परीक्षाओं, प्रतियोगिताओं में सफल हो पाना प्राय: इसी कौशल पर निर्भर रहता है। निशाना सही लगा सकने की विशेषता इसी अभ्यास पर निर्भर है। टिड्डे बरसात में हरे रंग के होते हैं और वे ही गर्मियों में पीले पड़ जाते हैं। इसका एक ही कारण है कि हरियाली उनके ध्यान में आँखों के आगे रहने से वह तन्मयता उनकी काया को हरा बनाये रहती है पर जब गर्मी आती है और घास सूखकर पीली पड़ जाती है, तब उस पर रहने वाले टिड्डे चारों ओर पीला रंग देखते और ठीक वैसे ही बन जाते हैं। यह मस्तिष्क पर छाये रहने वाले आयामों की प्रतिक्रिया है। वही सर्वत्र दीख पड़ता हैं। आँखों पर चश्मा जिस रंग का पहना जाता है, उसी रंग में रँगा हुआ सारा संसार प्रतीत होता है। जब बदलकर अन्य रंगवाला चश्मा पहन लिया जाता है, तो क्षण भर में सारा दृश्य जगत् अपना रंग बदल लेता है। यह भीतर से उत्पन्न हुई मान्यता की दृश्यमान प्रतिक्रिया है। रस्सी का साँप और झाड़ी

का भूत इसी प्रकार बनता है। वह भ्रान्तियाँ कई बार इतनी समर्थ और प्रबल होती है कि सशक्त शत्रु की तरह प्राणघातक भी बन जाती हैं। स्वसंकेतों के आधार पर व्यक्तित्व किस कदर उभरते और गिरते हैं, इसके असंख्य प्रमाण-उदाहरण हमें अपने इर्दगिर्द के वातावरण में बड़ी संख्या में विद्यमान दीखते हैं।

ध्यान योग इन दिनों एक मान्य प्रयोग बन गया है। चिन्तन में परिवर्तन लाने पर मनुष्य जीवन की दिशाधारा बदल जाती है। आरोग्य की उपलब्धि, मनोबल की प्रखरता एवं भविष्य निर्माण से जुड़ने वाली महती भूमिका में, सघन विचारधारा का असाधारण योगदान होता है। महत्त्वपूर्ण रचनात्मक कार्यों की रूपरेखा पहले योजना के रूप में अपना काल्पनिक स्वरूप निर्धारित करती है। इस संदर्भ में हुए निश्चय के उपरान्त कार्य रूप में परिणित होती है, साधन जुटते हैं और सफलता के आधार खड़े होते हैं। दैनिक घटनाओं का सुनियोजन बन पड़ना और अस्तव्यस्तता की चट्टान से टकराकर छितरा जाना और कुछ नहीं, केवल तत्परता और तन्मयता के समन्वय की कमी-बेशी रहने की परिणति है।

इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए 'ध्यान' को महती सामर्थ्य सम्पदा के रूप में समझा जा सकता है। उसका प्रभाव जिस कायकलेवर पर, मनः संस्थान पर, प्रगति और समृद्धि पर दिखाई देता है, उसे सफलताओं की आधारशिला कहा जा सकता है। हर व्यक्ति की अपनी दुनिया होती है। पहले वह बीज के रूप में मनःक्षेत्र की कल्पना बनकर आती है। इसके बाद मनःस्थिति और परिस्थिति का खाद-पानी लगने पर सुनिश्चित यथार्थता एवं सम्भावना के रूप में सामने आ खड़ी होती है। प्रकारान्तर से जीवन की प्रखरता और ध्यान-धारणा को एक ही रूप में देखा जा सकता है।

अन्त:करण की विशिष्टता और आत्मा की उत्कृष्टता की साधना हेतु, जिन छोटे-बड़े योगाभ्यासों का प्रयोग विभिन्न वर्गों के लोग विभिन्न प्रकार से करते रहते हैं, उनमें अन्य क्रिया-कृत्यों का समावेश तो रह सकता है पर ध्यान को नहीं छोड़ा जा सकता । यह ध्यान परब्रह्म का, प्रकाश-ज्योति का, आत्मिक प्रकाश-पुञ्ज का, षट्चक्रों का, पंचकोषों का, त्रिविध कलेवरों से सम्बन्धित तीन ग्रंथिओं का हो सकता है। इष्टदेवों के रूप में अवतारों, देवतत्त्वों, महामानवों अथवा दिव्य शक्तियों को माध्यम बनाया जा सकता है। इन्द्रिय तन्मात्राओं को विकसित करने के लिए शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श के कुछ भाव चित्र गढ़े जा सकते हैं। सोहम् साधना, अनहद नाद, आज्ञा चक्र जागरण, सहस्त्रार कमल का प्रस्फुटीकरण, कुण्डलिनी जागरण आदि की दिव्य साधनाएँ इसी प्रयोजन के साथ जुड़ती हैं।

इन सभी प्रयोगों के अन्तिम परिणामों को देखकर 'साधना से सिद्धि' के सिद्धान्त को कसौटी पर कसा जा सकता है। पर इस बीच का मध्यान्तर भी इस बात का प्रमाण देता रहता है कि क्रिया की प्रतिक्रिया किस रूप में सही पड़ रही है। इस आधार पर प्रगति का, अवगति का, स्थिरता का मूल्यांकन किया जा सकता है। यदि गलती हो रही हो, तो सुधारा जा सकता है। अवगति को रोका जा सकता है। परिणति यदि सफलता की दिशा में चल पड़ी हो तो उसे और भी अधिक तीव्र किया जा सकता है। इस प्रकार आत्मिक प्रगति की दिशा में सही रीति-नीति अपनाते हुए सही दिशा में चला और सही लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है। वैज्ञानिक प्रयोगशालाएँ उस संदर्भ में. महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं। उस आधार पर

निकले हुए निष्कर्ष जीवनोत्कर्ष में असाधारण रूप से सहयोगी बन सकते हैं। अभीष्ट सफलता को लक्ष्य तक पहुँचाने में उनका असाधारण योगदान हो सकता है।

शान्तिकुञ्ज की ब्रह्मवर्चस प्रयोगशाला में इस संदर्भ में, आवश्यक शोध प्रबन्ध के लिए सभी उपयोगी एवं आवश्यक उपकरण जुटाये गये हैं, जिनसे मस्तिष्क में चल रही हलचलों का स्वरूप, संदर्भ एवं गतिक्रम का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। स्नायु संस्थान की गतिविधियों एवं उनका मांसपेशियों तथा शरीर के अंग अवयवों पर सम्भावित प्रभाव की जानकारी प्राप्त की सकती है। प्रयोगशाला के इन निष्कर्षों के आधार पर आगे बढ़ चलने के लिए उपयुक्त मार्गदर्शन मिलता है और भूल होने की आशंका का निराकरण होता रहता है।

ब्रह्मवर्चस की प्रयोगशाला में एक चार चैनल का पॉलीग्राफ, एक दो चैनल पॉलीग्राफ, १८ चैनल का एक इलेक्ट्रोएनसेफेलोग्राफ संयंत्र तथा कई प्रकार के बायोफीडबैक यंत्र प्रयोग में लाये जाते हैं। पॉलीग्राफ द्वारा रक्त का दबाव, नाड़ी की गति, श्वाँस गति, त्वचा का तापमान, इलेक्ट्रोमायोग्राफ तथा इलेक्ट्रोएनसेफेलोग्राफ का एक साथ मापन कर ध्यान की अवधि में शरीर में संव्याप्त विद्युतीय क्षेत्र में परिवर्तन की अति सूक्ष्म स्थिति तक को मापा जा सकता है। ई० ई० जी० उपकरण मस्तिष्क की जागृत, प्रसुप्त तथा गहरे ध्यान की स्थिति में, तरंगों का अंकन कर बताता है कि बहिरंग से मोड़कर व्यक्ति स्वयं को कितना अन्तर्मुखी बना सका? बायोफीडबैक यंत्र में त्वचा का विद्युतीय प्रतिरोध (जी.एस.आर.) माँसपेशियों की विद्युत (ई.एम.जी.) तथा मस्तिष्क की अल्फा तरंगें (आल्फा ई.ई.जी.) इन तीनों को दृश्य एवं ध्वनि के माध्यम से साधक को

दिखाया व ध्यान प्रक्रिया द्वारा तीनों में परिवर्तन लाने हेतु उसे प्रशिक्षित किया जाता है। अपनी मन:शक्ति के माध्यम से साधक तनाव शैथिल्य द्वारा त्वचा का प्रतिरोध ज्यादा करता तथा ध्यान की स्थिति में ही दृश्यमान अल्फा तरंगें उत्पन्न करता है। इससे उसका मनोबल भी बढ़ता है एवं क्रमश: ध्यान की गहराई में जाने का प्रशिक्षण भी मिलता है। इन प्रयोगों के अलावा रिएक्शन टाइम, एप्टीट्यूड, इल्युजन, मेमोरी, सेल्फ कन्सेप्ट संबन्धी लगभग १२ परीक्षण और कराये जाते हैं, जो साइकोमेट्री की परिधि में आते हैं।

इन प्रयोगों का आरम्भ ''रंग-ध्यान'' से किया जाता है। यह अधिक प्रत्यक्ष, अधिक सरल और अधिक स्पष्ट है। रंग-विज्ञान के ज्ञाता जानते है कि सूर्य किरणों में सात रंग होते हैं। उनमें से जो पदार्थ जिस रंग की किरण को, जिस अनुपात में परावर्तित करता है, वह उसी रंग का दिखने लगता है। रंग स्वाभाविक हो या कृत्रिम, सभी इसी आधार पर विनिर्मित होते हैं और परिणाम उत्पन्न करते हैं। कमरों में जिस रंग को पोता जाता है, खिड़कियों में जिस रंग के पर्दे रहते हैं, उसी रंग की किरणों का प्रवाह छनकर उसी परिधि में अपना प्रभाव प्रस्तुत करता है। रंगीन काँचों या काँच पर लगे रंगीन जिलेटीन कागजों से भी यही उद्देश्य पूरा होता है।

ध्यान धारणा के रंग-सम्बन्धी प्रयोगों में साधक को आँखें बंद करके अमुक रंग के ध्यान का निर्देश दिया जाता है। सुविधा के लिये उसी रंग के चश्मे पहना देते हैं अथवा उस कक्ष में वैसे पर्दे लटका कर कृत्रिम प्रकाश उत्पन्न कर रंगों का ध्यान करने को कहा जाता है। इलेक्ट्रॉनिक स्ट्रोबोस्कोप की मदद से सात विभिन्न रंगों के बल्बों से आँखों पर फ्लैशेज डाले जाते हैं। रंगों का मन-मस्तिष्क पर

प्रभाव सर्वविदित है एवं जाँचा- परखा जा चुका है। लाल रंग स्नायु संस्थान एवं रक्त की क्रियाशीलता को बढ़ाता है। प्राण शक्ति इससे बढ़ती है। नारंगी रंग साधक की जीवाणु प्रतिरोधी सामर्थ्य बढ़ाता है तथा सभी अंगों के चयापचय प्रक्रिया को संतुलित करता है। पीला रंग पाचन संस्थान तथा स्वैच्छिक स्नायु संस्थान को संतुलित रखता है। यह बुद्धिवर्धक भी है। हरा रंग मानसिक तनाव से मुक्ति दिलाता व हारमोन ग्रंथियों का स्त्राव बढ़ाता है। नीला रंग रक्त परिशोधन एवं मानसिक अवसाद के हेतु प्रयुक्त होता है। बैगनी रंग हृदय की गति को स्थिर तथा श्वसन प्रक्रिया को संतुलित करता है। यह दर्दनाशक भी है। सभी रंग विभिन्न सम्मिश्रण में भाव संस्थान को प्रभावित-उत्तेजित करते हैं।

देखा गया है कि सही निदान के बाद निर्धारित रंग का ध्यान करने पर, अभीष्ट प्रभाव उपयुक्त मात्रा में मिलना आरम्भ हो जाता है। सूर्य किरण चिकित्सा एक विशेष कक्ष में बिठाकर अथवा रंगीन बोतलों का पानी पिलाकर लम्बे समय से की जाती रही है। पर रंग-ध्यान का नया निर्धारण नये अनुसंधान के आधार पर ही बन पड़ा है। इस ध्यान प्रक्रिया की अवधि में क्या परिवर्तन रक्त के रासायनिक घटकों तथा शरीर की इलेक्ट्रोफिजियोलॉजी पर हो रहा है, इसे विभिन्न यंत्रों की मदद से मापा जा सकता है। इस उपचार की प्रतिक्रिया शारीरिक रोगों के निवारण की अपेक्षा मानसिक अस्तव्यस्तता को दूर करने, तनाव मिटाने तथा मनःसंतुलन बिठाने में अधिक प्रभावोत्पादक होते देखी गयी है।

रंगों के ध्यान के आधार पर यह समझना अधिक सरल और सम्भव हो जाता है कि उच्चस्तरीय ध्यान-धारणा की, त्राटक के विभिन्न रूपों की परिणति कितनी गहराई तक प्रवेश करके अन्तराल को प्रभावित

कर सकती है। ध्यान-धारणा सभी अध्यात्म उपचारों का मेरुदण्ड है। उसी के समन्वय से हर योगाभ्यासी प्राणवान् बनता एवं अभीष्ट परिणाम प्रस्तुत करता है। शांतिकुञ्ज के ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान ने अध्यात्म विद्या के परिणामों को खोजते हुए ध्यान विद्या के सम्बन्ध में अतिमत्त्वपूर्ण प्रसंगों की जानकारी प्राप्त की है। अगले दिनों उसके और भी व्यापक परिणाम सामने आकर रहेंगे।

आधुनिकतम उपकरणों से सुसज्जित होते हुए भी ब्रह्मवर्चस का स्वरूप एक आश्रम, आरण्यक के समान है, जहाँ अध्यात्म उपचारों से सर्वांगपूर्ण चिकित्सा के सैनिटोरियम एवं दिशानिर्देश की सुविधा सभी साधकों के लिए अपलब्ध है। रोगों की चिकित्सा नहीं, अपितु जीवनी शक्ति संवर्धन, संकल्पशक्ति व आत्मबल में अभिवर्धन इन उपचारों का मुख्य लक्ष्य है। इसी कारण यहाँ रोगियों पर नहीं अपितु साधक स्तर के व्यक्तियों पर ही प्रयोग-परीक्षण होता है। जीवन क्रम कैसे बदला जाता है, इसे यहाँ प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

इस समग्र तंत्र का संचालन शान्तिकुञ्ज स्थित ऋषिसत्ता द्वारा सम्पन्न होता है। कोई भी यह भली-भाँति समझ सकता है कि यह मानवी प्रयासों का प्रतिफल नहीं है। ऐसा अप्रत्याशित पुरुषार्थ मात्र नियन्ता की विधि व्यवस्था, महाकाल की चेतन सत्ता द्वारा ही संभव है। सुनियोजित, विधि व्यवस्था व अब तक के निष्कर्षों को दृष्टिगत रखने पर यह विश्वास दृढ़ होता है कि प्रस्तुत शोध प्रक्रिया के परिणाम चमत्कारी एवं युगान्तरकारी होंगे।

मुद्रक-युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा।